परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 15, अंक 3, दिसंबर 2008

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, 2008

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में होता है। इसके समूल्य प्रकाशन की योजना विचाराधीन है, इसलिए इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह पत्रिका न्यूपा वेबसाइट – www.nuepa.org पर भी नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक

परिप्रेक्ष्य

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा)

17–बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली–110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के लिए कुलसचिव, न्यूपा द्वारा प्रकाशित तथा बच्चन सिंह, बी–275, अवन्तिका, रोहिणी से. 1, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसैट होकर वृजवासी प्रिन्टर्स प्रा. लि. नौएडा, उत्तर प्रदेश, में न्यूपा के प्रकाशन एकक द्वारा मुद्रित।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 3, दिसंबर 2008

विषय सूची

आलेख

रजनी रंजन सिंह
मानव मूल्य मापनी के सैद्धांतिक निहितार्थ और विकास प्रक्रम 1

रश्मि श्रीवास्तव
भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली में अनुशासन का मनोवैज्ञानिक पक्ष तथा उसकी प्रासंगिकता 15

रमेश धर द्विवेदी और प्रतिमा
स्वतंत्रता के बाद उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा का विकास 27

रेणु ठाकुर
दूरस्थ शिक्षा के संदर्भ में हिंदी की स्व-अनुदेशात्मक मुद्रित सामग्री का विकास 41

शोध टिप्पणी / संवाद

शिरीष बालिया और अर्चना पुरोहित
माध्यमिक स्तर की छात्राओं पर परम्परागत शिक्षण, अग्रिम संगठन प्रतिमान तथा रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन का प्रभाव 59

कुमार संजीव और सुधाकर प्रसाद सिंह
सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत सेवाकालीन प्रशिक्षण पा रहे स्कूली शिक्षकों के समावेशी प्रशिक्षण कार्यक्रम का मूल्यांकन 75

ज्योत्सना सक्सेना और शिरीषपाल सिंह
माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता एवं व्यवसायिक संतुष्टि 81

महेश कुमार मुछाल और सुभाष कुमार
उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा का उनके समायोजन तथा शैक्षिक उपलब्धि 89

गरिमा सिंह
पूर्वांचल में बालिका शिक्षा और बालिका विद्यालयों का विस्तार 101

कमलेश कुमार चौधरी
उत्तर प्रदेश के बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों का समायोजन 107

शैलजा सिंह
उच्च शिक्षा का वित्तीय प्रबंधन 117

चिंतक और चिंतन

देवेन्द्र सिंह
दौलत सिंह कोठारी का शिक्षा दर्शन 127

समीक्षालेख

अजय कुमार मिश्र
राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन का इतिहास 137

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 3, दिसम्बर 2008

मानव मूल्य मापनी के सैद्धांतिक निहितार्थ और विकास प्रक्रम**

रजनी रंजन सिंह *

मानवीय मूल्य, सभ्य व सुसंस्कृत समाज की आधारशिला होता है। समाज की प्रगति व समृद्धि के लिए एक ऐसी बुनियाद की आवश्यकता होती है जो कि समानता, बंधुता स्वतंत्रता व न्याय जैसे मूल्यों पर आधारित हो। इन मूल्यों के बिना विकास की गति संगत और सतत् नहीं हो सकती। ये मूल्य मानव की गरिमा की पुर्नस्थापना, मानवीय प्रतिष्ठा एवं मानवीय हित के सर्वतोमुखी विकास तथा सामाजिक जीवन की समरसता हेतु अनुकूल परिस्थितियों के निर्माण हेतु अपरिहार्य हैं। मानवीय जीवन द्वारा मानव-समाज के उत्थान, पर आधारित 'मानववाद' जो कि एक दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक विचारधारा है, यह इस तथ्य पर जोर डालती है कि सभी मानव समान हैं। 'सभी-मानव-समान' का सिद्धांत केवल व्यक्तिपरक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि समाजपरक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। समाज अपने अस्तित्व को चिरस्थायी बनाने के लिए कुछ नियमों आदर्शों लोकाचारों जैसे प्रणालियों को विकसित करता है और ये किसी न किसी रूप में किसी विशिष्ट मूल्यों से संबद्ध होते हैं, जो उस समाज के सदस्यों के जीवन का मुख्य उद्देश्य होते हैं। समाज यह कभी नहीं चाहता कि उसका मूल्य अपरदित हो और उसका अस्तित्व खतरे में पड़े। अत: जीवन के उद्देश्य मात्र को ही मूल्य नहीं कहा जाता है, बल्कि आचरण के नियम को भी मूल्य कहा जाता है। ऐसे नियम समाज या राष्ट्र कभी टूटने नहीं देना चाहता है, वे नियम समाज के मूल्य माने जाते हैं। प्रत्येक समाज किसी-न-किसी नियम से ही चलता है। समाज में व्यक्तियों के व्यवहार का निर्धारण, समाज के द्वारा बने बनाये नियमों द्वारा होता है। वैसे ही नियमों को मानदंड कहा जाता है।

**यह मानव मूल्य मापनी (HVS), शोधकर्त्ता के पी.एच-डी. कार्य में प्रयुक्त हुआ स्व-विकसित मापनी है।

* विमाग प्रमुख, शिक्षक-शिक्षा विमाग, एम.एम.आई. मसूरी, उत्तराखंड-248179 Email : rajput_rranjansingh@yahoo.co.in

W.G. Summer ने इसे (Mores) लोकाचार कहा है। यदि कोई लोकाचार उच्च श्रेणी का हो, तो उसे मूल्य माना जाता है। सार्वभौमिकता व परिवर्तनशीलता की दृष्टि से यदि मूल्यों की प्रकृति पर दृष्टिपात किया जाय तो कुछ मूल्य ऐसे होते हैं जो देश व काल की दृष्टि से उनमें परिवर्तन नहीं होते, अर्थात वे अपरिवर्तनशील होते हैं और मानवीय परिप्रेक्ष्य में यदि विचार किया जाय तो वे उच्च श्रेणी के मूल्य होते हैं, उन्हें मानवीय मूल्य की संज्ञा दी जाती है। मानव-सभ्यता के विकास-क्रम पर यदि गौर किया जाय तो 18वीं सदी से लेकर अब तक, मानवतावादी चिंतन का स्वरूप उत्तरोत्तर मुखरित ही हुआ है। मानवतावाद यूरोप में 'पुर्नजागरण' (रिनासां) और 'ज्ञानोदय' (इनलाइटेनमेंट) का आधारभूत तत्व कहा जा सकता है। अमरीकी स्वतंत्रता की घोषणा और फ्रांस की मनुष्य तथा नागरिक के अधिकारों की घोषणा से लेकर मानवाधिकारों की सार्वजनिक घोषणा संयुक्त राष्ट्र संघ (यू.एन.ओ.) (1948) मानवीय-मूल्यों का दर्पण है जो कि व्यक्ति के रूप में मनुष्य की गरिमा की मौलिकता का बयान करता है। वास्तव में यह परिवर्तित दृष्टिकोण ने सामाजिक प्रगति तथा उच्चतर जीवन स्तर को बढ़ावा देने के लिए, महत्वपूर्ण उत्प्रेरक का कार्य किया है।

भारतीय संस्कृति और सभ्यता में भी मानवतावादी परंपरा रही है। भारतीय-दर्शन परंपरा ने सार्वजनीन बंधुत्व और सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में देखने (वसुधैव कुटुम्बकम) के संप्रत्यय को स्पष्ट किया। स्पष्टत: ये सभी मूल्य, मानव-मूल्य ही हैं जो कि भारत के इस अद्वितीय पहचान को वैश्विक धरातल पर और दीप्तिमान किया है। हम लोग विदेशी-शासन के दौरान मूल्यों के क्षरण और मूल्य-संकट जैसी स्थिति में जीने को विवश थे, स्वतंत्रता के पश्चात एक संविधान का निर्माण किया जो कि पूरे विश्व में मानवतावादी दृष्टिकोण से एक आदर्शतम संविधान माना जाता है। यह संविधान हमारे आदर्शों, सपनों तथा मूल्यों का दर्पण है। यह जनता की विशिष्ट सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक, प्रकृति, आस्था एवं आकांक्षाओं पर आधारित है। हमारे संविधान की उद्देशिका में जो कि इसका संपूर्ण प्रतिबिंब है, कहा गया है, ''हम भारत के लोग भारत को एक प्रभुत्व संपन्न, लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को न्याय, स्वतंत्रता और समानता दिलाने और उन सबमें बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प करते हैं। न्याय की परिभाषा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय के रूप में ही गयी है। स्वतंत्रता में विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और

उपासना की स्वतंत्रता सम्मिलित है और समानता का अर्थ है, प्रतिष्ठा तथा अवसर की समानता।'' हमारे संविधान की उद्देशिका में बहुत ही भव्य और उदान्त शब्दों का प्रयोग हुआ है। वे उन सभी उच्चतम मूल्यों को साकार करते हैं जिनकी प्राकल्पना मानव बुद्धि, कौशल तथा अनुभव अब तक कर पाया है।

42वें संशोधन के बाद जिस रूप में उद्देशिका इस समय हमारे संविधान में विद्यमान है उसके अनुसार, संविधान निर्माता जिन सर्वोच्च या मूलभूत संवैधानिक मूल्यों में विश्वास करते थे, जिन्हें मानवीय मूल्यों की संज्ञा दी जाती है, उन्हें सूचीबद्ध किया जा सकता है। वे चाहते थे कि भारत गणराज्य के जन-जन के मन में इन मूल्यों के प्रति आस्था और प्रतिबद्धता जगे-पनपे तथा आने वाली पीढ़ियाँ जिन्हें यह संविधान आगे चलाना होगा इन मूल्यों से मार्गदर्शन प्राप्त कर सकें। ये उदात्त मूल्य हैं- संप्रभुता, समाजवाद, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र, गणराज्यीय स्वरूप, न्याय, स्वतंत्रता, समानता, बंधुता, व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता तथा अखंडता।

मानवाधिकार की सार्वजनीन घोषणा (1948), जो कि मानव-मूल्य के दृष्टिकोण से मील का पत्थर है और भारतीय संविधान में बहुत साम्यता है। भारत के संविधान की रचना का कार्य मानवाधिकारों की सार्वजनीन घोषणा के अंगीकार किए जाने के लगभग दो वर्ष पूर्व आरंभ हो गया था। परंतु भारत की संविधान सभा द्वारा 26 नवंबर 1949 को अंगीकृत भारतीय संविधान में उक्त घोषणा का प्रत्येक अनुच्छेद प्रतिबिंबित हुआ है। प्रस्तुत तालिका से भारतीय संविधान और कानून की व्यवस्थाओं के साथ मानवाधिकारों की सार्वजनीन घोषणा की संगति का पता चलता है और साथ ही मानव मूल्य के विमागों का भी स्पष्टीकरण होता है।

निम्नलिखित तालिका से इस बात की स्पष्टीकरण मिलती है कि मानवाधिकार की सार्वजनीन घोषणा (UDHR) और भारतीय संविधान में मानव-मूल्य के दृष्टिकोण से पूर्ण साम्यता है। UDHR, 1948 में मानव अधिकारों की सूची जो कि मानव-मूल्यों से ओत-प्रोत हैं को पाँच श्रेणियों में विभक्त किया गया है- (i) नागरिक मूल्य (ii) राजनैतिक मूल्य (iii) आर्थिक मूल्य (iv) सामाजिक मूल्य और (v) सांस्कृतिक मूल्य। इन मूल्यों को इस मानव मूल्य मापनी (HVS) में मानव मूल्य के विमाओं को सम्मिलित किया गया है ये मूल्य स्प्रैंगर (1928) जो कि 'Types of Man' पुस्तक के रचयिता हैं

तालिका: 1

भारतीय संविधान और कानून की विभिन्न व्यवस्थाओं के साथ मानवाधिकारों की सार्वजनीन घोषणा (UDHR) के अलग-अलग अनुच्छेदों की संगति दर्शाने वाली तालिका

UDHR अनुच्छेदों की क्रम संख्या	UDHR की विमा	भारतीय संविधान के अनुच्छेदों की संख्या
1	मानव का अधिकार मूलभूत संप्रत्यय	14
2	''	15
3	नागरिक मूल्य (civil)	21
4	''	23
5	''	21
6	''	14 & 21
7	''	14
8	''	32 & 226
9	''	22
10	''	39 क
11	''	20
12	''	संसद द्वारा बनाया गया कानून
13	''	19
14	''	स्पष्ट व्यवस्था नहीं परंतु शरणार्थियों को
15	''	5 & 9 & 10
16	''	अलग-अलग धर्मों के

		अलग-अलग प्रावधान
17	''	300 क
18	''	25
19	''	19 (क)
20	''	19 ख
21	राजनैतिक मूल्य	16, 325 & 326
22	सामाजिक मूल्य आर्थिक, सांस्कृतिक	38 (1)
23	आर्थिक मूल्य	41, 39क, 43, 19(1)
24	सामाजिक मूल्य	43
25	''	42, 47, 39(च)
26	सांस्कृतिक मूल्य	45, 21(अ)
27	''	51 क
28	सामाजिक मूल्य	38 & 51
29	रक्षात्मक प्रावधान	51 क
30	''	51 क

*प्रस्तुत तालिका NCERT से प्रकाशित 'मानवाधिकार स्रोत ग्रंथ' पर आधारित है।

और जिनका मूल्य अध्ययन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है, अध्ययन के आधार पर वर्गीकृत है यह वर्गीकरण प्रमुख मनोवैज्ञानिक (आलपोर्ट) वर्नन एवं लिंडजे (1951) जिनकी ख्याति मूल्य-मापनी विकास के क्षेत्र में अध्ययन पर भी आधारित है। अर्थात् इस मानव मूल्य मापनी में मानव मूल्य के वर्गीकरण का आधार दार्शनिक संवैधानिक और मनोवैज्ञानिक तीनों ही है इस मापनी मं इन पाँचों विमाओं के योग को मानव मूल्य मापनी की संज्ञा दी गयी है।

मानव मूल्य को मापने के लिए प्रस्तुत अध्ययन में रेटिंग मापनी का चुनाव किया

गया है। सामान्यत: रेटिंग मापनी एक ऐसा शोध उपकरण है जिसके माध्यम से प्रेक्षक (Observer) या रेटर (Rater) किसी वस्तु, व्यक्ति या घटना को एक दिए गए वर्ग मापनी (Category Scale) के रूप में मापता है। (सिंह, 2006) यह प्रेक्षक के अनुक्रिया की तीव्रता को उच्चतर क्रम से निम्नस्तर क्रम में इंगित करता है। यहाँ पर आंकिक मापनी जो कि रेटिंग मापनी का एक प्रकार है का प्रयोग किया गया है। आंकिक मापनी (Numerical Scale) ऐसे मापनी को कहा जाता है जिसमें प्रेक्षक को निश्चित अंकों का एक क्रम दिया जाता है जो अच्छी तरह परिभाषित होते हैं तथा प्रेक्षक मापित वस्तुओं या विचारों को अपने सामान्य अनुभव के आधार पर अंक प्रदान करते हैं। यहाँ पर 9 बिंदु मापनी व 5 बिंदु मापनी का प्रयोग किया गया है। मानव मूल्य मापनी (HVS) की वैज्ञानिकता, वैधता, विश्वासनीयता व मानक जैसी विशेषताओं को सुनिश्चित करने के लिए, इसके सम्पूर्ण विकास-क्रम को चार भागों में विभक्त किया गया है जो कि निम्नलिखित है-

(1) HVS की विकास योजना, (Planning of the HVS)

(2) मापनी में सम्मिलित किए जाने वाले पदों की रचना करना, (Writing Item)

(3) प्रायोगिक जाँच स्तर (Experimental Try-out)

  (a) प्रारंभिक जाँच स्तर (एल. थर्स्टन (1920) सहमति उपागम)

  (b) अंतिम जाँच स्तर (Final Try-out)

  (c) संकलित रेटिंग उपागम रेनसिस लिकर्ट, 1932) (Summated Ratings Approach)

(4) HVS का मानकीकरण (Standardisation)

मानव मूल्य मापनी (HVS) के सम्पूर्ण विकास-क्रम को समझने के लिए उपरोक्त चारों सोपान का वर्णन निम्नवत् है।

HVS की विकास योजना सोपान में, मापनी के लिए विषयवस्तु पदों के प्रकार, पदों की संख्या, समयावधि, अंकन विधि, मापनी में सम्मिलित किए जाने वाले पदों के विश्लेषण-उपागम, मानव-मूल्यों के विभिन्न आयाम जैसे महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए। HVS में मानव मूल्य के पाँच आयामों (नागरिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक व

सांस्कृतिक मूल्य) को सम्मिलित किया गया। इनके सम्मिलित करने के सभी आधारों का जिक्र इससे पहले किया जा चुका हूँ। इसके विमाओं के सुनिश्चित करने के बाद, पदों की रचना के लिए निकप-परिस्थिति (Criterion Situation) की पहचान की गयी और मापनी का प्रारूप तैयार किया गया। चूँकि यह मानव मूल्य मापनी उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों का भारतीय संविधान में निहित मानव-मूल्यों के प्रति सजगता के मापन हेतु विकसित किया गया, इसलिए पदों के निर्माण हेतु उन विद्यार्थियों के अनुभव-क्षेत्रों की पहचान की गयी और तद्नुरूप उनका निर्माण किया गया। उन अनुभवों क्षेत्रों के रूप में व्यक्तिगत स्वतंत्रता, न्यूनतम आवश्यक ऐसी दशा जो जीवन के अस्तित्व के लिए आवश्यक हो, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, रीति-रिवाज, लोकाचार, आधुनिकीकरण, देश की एकतातथा अखंडता, व्यक्तिगत कर्तव्य व अधिकार विशेष रूप से समाज के प्रति), समता, समानता, बंधुत्व, संप्रभुता, न्याय, प्रांतवाद, भाषावाद, सांस्कृतिक विविधता, आर्थिक अनिवार्यताएं व राजनीति दशाओं को सम्मिलित किया गया। उनके इन्हीं अनुभव क्षेत्रों के आधार पर मानव मूल्य के प्रति सजगता (उपस्थिति/अनुपस्थिति) के सूचकांक द्योतक माना गाया।

वर्तमान मापनी (HVS) में पदों के चुनाव व निरस्तरण के लिए गुणित मापनी (Scale Product) उपागम का प्रयोग किया गया। यह उपागम, थर्स्टन (Thurston] 1920) के समदृष्टि अंतराज विधि (Method of Equal Appearing Interval) और रेनेसिस लिकर्ट (Renesis Likert 1932) के संकलित रेटिंग्स की विधि (Method of Summated ratings) का योग है। प्रायोगिक जाँच स्तर के प्रारंभिक स्तर पर थर्स्टन उपागम का प्रयोग यिका गया ताकि HVS में सम्मिलित पदों की विषयगत वैधता सुनिश्चित की जा सके। इस विधि में 50 ऐसे विषय विशेषज्ञों को शामिल किया गया जो मानव मूल्यों और भारतीय संवधिान के अनुच्छेदों की तारतम्यता का ज्ञान रखता हो। सभी विशेषज्ञों जजों से पदों की विषयगत वैधता की तीव्रता के आधार पर, नौ बिंदु मापनी पूर्ण असहमति (1) से लेकर पूर्ण असहमति (9) सातत्य पर प्रतिक्रिया देने को कहा गया। अर्थात HVS में सम्मिलित पदु भारतीय संविधान में निहित मूल्यों को कितनी सीमा तक प्रतिबिम्बित करता है के प्रतिक्रिया का आधार माना गया। उनकी प्रतिक्रिया के आधार पर प्रत्येक पद का मापनी मूल्य माध्यिका के रूप में निकाला

गया। इसके बाद उन्हीं आंकड़ों के आधार पर प्रत्येक कथन का Q.D. (चतुर्थांश विचलन) ज्ञात किया गया। Q.D. से किसी कथन द्वारा अभिव्यक्ति विशेषताओं या गुणों के बारे में निर्यातकों की असहमति की मात्रा का पता चलता है। वैसे कथन जिनका Q.D. बड़ा होता है, को इस ख्याल से अलग कर दिया जाता है, उसके बारे में निर्णायकों में मतभेद है। अत: का मान पदों के चयन व निरस्तरण का आधारा होता है। HVS में सम्मिलित प्रत्येक पदों का QD मान निकाला गया और जिनका मूल्य सार्थ QD मान (Significant Quartile Deviation) से अधिक पाया गया इस पद को निरस्त कर दिया गया। एल. थर्स्टर्न उपागम, पदों का विश्लेषण विशेषज्ञों के दृष्टिकोण से करता है। इस विधि में उस समष्टि के दृष्टिकोण को महत्व नहीं दिया जाता, जिसके लिए मापनी का निर्माण किया गया है। इस दोष को दूर करने के लिए रेनेसिस लिंकर्ट विधि एक उपयुक्त विधि है जो पदों के विश्लेषण का आधार लक्षित समष्टि के अनुक्रिया को मानती है। अत: HVS के विकास में पदों के विषयगत वैधता के लिए एल. थर्स्टर्न तथा विभेदन वैधता (Discriminating Validity) निर्धारण के लिए आर. लिंकर्ट विधि का प्रयोग किया गया जो कि परीक्षण की सार्थकता निर्धातरण में अहम भूमिका निभाती हैं।

प्रायोगिक जाँच स्तर के दूसरे स्तर पर लिंकर्ट का संकलित रेटिंग्स का प्रयोग किया गया इस विधि में HVS के उन सभी पदों को सम्मिलित किया गया जो थर्स्टर्न विधि के माध्यम से चुने गए थे। इस चरण में लक्षित जनसंख्या, जो कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी थे, उनमें से स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्श विधि के माध्यम से 400 छात्र-छात्राओं, जो कि IXth, Xth, XIth व XIIth कक्षाओं में अध्ययनरत हो का चुनाव किया गया उन विद्यार्थी के चयन के बाद, उनपर HVS को प्रशासित किया गया और उनसे यह आग्रह किया गया कि वे अपनी प्रतिक्रिया को पांच बिन्दू पैमाना पर पूर्ण असहमति (1) से लेकर पूर्ण असहमति (5) के सातत्य पर रखें। विद्यार्थियों की प्रतिक्रिया की मौलिकता की जाँच के लिए धनात्मक और ऋणात्मक दोनों प्रकार के पद, मापनी में सम्मिलित किए गए थे। धनात्मक पदों के लिए अंकन की प्रणाली, ऋणात्मक पदों से भिन्न थी। इन दोनों प्रकार के पदों के अंकन प्रणाली को निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है।

तालिका-2

HVS में सम्मिलित धनात्मक व ऋणात्मक पदों की अंकन प्रणाली

प्रतिक्रिया के प्रकार	धनात्मक पद हेतु	ऋणात्मक पद हेतु
पूर्ण असहमत	1	5
असहमत	2	4
उदासीन	3	3
सहमत	4	2
पूर्ण सहमत	5	1

अन्त में कथनों का चयन एकांश विश्लेषण के माध्यम से किया गया। लिंकर्ट विधि में एकांश विश्लेषण का चरण एक महत्वपूर्ण कदम है। इसके द्वारा उत्तम कथनों का चयन किया जाता है। जबकि थर्स्टन विधि में इस तरह के वैज्ञानिक चयन पद्धति का अभाव होता है। एकांश-विश्लेषण करने में एकांश-योग सहसंबंध ज्ञात किया जाता है। लेकिन यहाँ पर Edwards, 1957 (द्वारा लिंकट विधि में संशोधित) विधि द्वारा एकांश विश्लेषण का कार्य किया गया, जिसमें कुल प्राप्तांक के आधार पर सभी विद्यार्थियों के समूह को दो भागों में बाँटा गया, उच्च समूह और निम्न समूह। कुल प्राप्तांक के 27% उपरी भाग को उच्च समूह व 27% से निचले भाग को निम्न समूह की संज्ञा दी गयी। इसके बाद प्रत्येक कथन का उच्च समूह और निम्न समूह दोनों का अलग-अलग माध्य और प्रामाणिक विचलन निकाला गया। इन मानों के माध्यम से प्रत्येक कथन पर इन दोनों समूहों के माध्यों के अन्तर की सार्थकता की जाँच t-test (परीक्षण) से की गयी। सार्थक-t मान को पदों के चयन का आधार बनाया गया। जिस पद के t-मान सार्थक नहीं थे, उनको इस आधार पर निरस्त किया गया कि वे पद उच्च मानव-मूल्य वाले विद्यार्थी और निम्न मानव-मूल्य वाले विद्यार्थी में सार्थक भेद नहीं करते है। जबकि वास्तविक धरातल पर दोनों समूहों के बीच सार्थक अन्तर होता है। t-मान की सार्थकता को 0.05 और 0.01 के सार्थकता स्तर पर जाँच की गयी। इस तरह HUS को अंतिम रूप प्रदान करे के लिए थर्स्टन एवं लिकर्ट दोनों विधियों को अमन्वित प्रयोग किया गया और अन्तोगत्वा कुल सौ पदों को मानव मूल्य मापनी के लिए चयन किया गया। अर्थात्

HVS के पांचों विमाओं में 25-25 पदों को सम्मिलित किया गया। प्रारंभ से लेकर HVS के अंतिम प्रारूप तक समस्त पदों के चयन व निरस्तरण का उल्लेख निम्नवत है।

तालिका-3

प्राथमिक जाँच स्तर थर्स्टन विधि में कुल पदों, चयनित पदों व निरस्तरित पदों की संख्या

HVS की विमा	कुल पदों की संख्या	चयनित पदों की संख्या	निरस्तरित पदों की संख्या
नागरिक मूल्य (Civil value)	53	37	16
आर्थिक मूल्य (Economic value)	30	28	2
सामाजिक मूल्य (Social value)	25	22	3
सांस्कृतिक मूल्य (Cultural value)	25	23	2
राजनीतिक मूल्य (Political value)	27	24	3
मानव मूल्य समग्र रूप में (As a while value)	160	134	26

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि विषय विशेषज्ञों की असहमति के आधार पर कुल 160 पदों में से 26 पदों को निरस्त कर दिया गया, जिसके Q.D. को मान 2 या 2 से अधिक था। बाकी 134 चयनित पदों को लिकर्ट विधि से उपचयनित किया गया जिसको विभिन्न पक्षों का स्पष्टीकरण निम्न तालिका में किया गया है।

तालिका-4 से यह स्पष्ट है कि कुल 134 पदों में से 26 पदों को निरस्तरित किया गया, जिनका आधार t-value था। प्रत्येक पदों के लिए t-value की सार्थकता 0.05 और 0.01 के स्तर पर जाँच की गयी। इस तरह 108 पदों का चयन किया गया। लेकिन अन्त में सभी विमाओं को समान रूप से HVS में भार देने के लिए 20-20 पदों को ही सम्मिलित किया गया अर्थात HVS के अंतिम प्रारूप में कुल 100 पदों को शामिल किया गया। HVS के अंतिम प्रारूप के निर्धारण के बाद उसका मानकीकरण किया

तालिका-4

अंतिम जाँच स्तर लिकर्ट विधि में कुल पदों, चयनित पदों व निरस्तरित पदों की संख्या

HVS की विमा	कुल पदों की संख्या	चयनित पदों की संख्या	निरस्तरित पदों की संख्या
नागरिक मूल्य (Civil value)	27	25	12
आर्थिक मूल्य (Economic value)	28	22	6
सामाजिक मूल्य (Social value)	22	20	2
सांस्कृतिक मूल्य (Cultural value)	23	21	2
राजनीतिक मूल्य (Political value)	24	20	5
मानव मूल्य समग्र रूप में (As a while value)	134	108	26

गया। मानकीकरण प्रक्रिया में तीन पहलुओं को दृष्टिगत किया गया। प्रथम विश्वसनीयता द्वितीय वैधता और तृतीय व अंतिम मानक।

विश्वसनीयता (Reliability) जो कि किसी भी परीक्षण की एक तकनीकी विशेषता होती है, जिसका संबंध चर त्रुटि (variable error) से होता है। अनास्तेसी (Anastasi) के अनुसार ''परीक्षण की विश्वसनीयता से अभिप्राय भिन्न-भिन्न अवसरों पर, या समतुल्य पदों के भिन्न-भिन्न विन्यासों पर किसी व्यक्ति के द्वारा प्राप्त अंकों की संगति से है।'' HVS की विश्वसनीयता को ज्ञात करने के लिए अर्द्ध-विच्छेद विधि तथा परीक्षण पुनः परीक्षण (Test-Retest) विधि का प्रयोग किया गया। HVS के विश्वसनीयता गुणांक का विवरण निम्न तालिका में है।

विश्वसनीयता के अलावा वैधता भी किसी परीक्षण की महत्वपूर्ण विशेषता होती है। वैधता का संबंध, परीक्षण के स्थिर त्रुटि से है। क्रोन बैक ''वैधता वह सीमा है, जिस सीमा तक परीक्षण नही मापता है, जिसके लिए इसका निर्माण किया गया है।'' HVS

तालिका-5

HVS के विश्वसनीयता गुणांक का विवरण

HVS की विमा	अर्द्धविच्छेद विश्वसनीयता गुणांक	परीक्षण-पुनः परीक्षण विश्वसनीयता गुणांक
नागरिक मूल्य	87	85
आर्थिक मूल्य	83	84
सामाजिक मूल्य	79	73
सांस्कृतिक मूल्य	78	76
राजनीतिक मूल्य	86	89
मानव मूल्य समग्र रूप में	84	89

के विकास क्रम में एल. थर्स्टन विधि को प्रथम जांच स्तर पर प्रयोग में लाया गया था। यह विशेषज्ञों की राय पर आधारित होती है। जोकि Content Validity को संपुष्ट को संपुष्ट करता है, गिल्फर्ड, 1954। इस तरह के वैधता की पुष्टि, लिकर्ट विधि द्वारा प्राप्त पदों के t-मान से भी होती है। इसके अतिरिक्त HVS के लिए कारक वैधता, को भी (सभी विमाओं के आपसी सहसंबंध गुणांक द्वारा) सुनिश्चित किया गया। HVS के कारक वैधता को तालिका-6 प्रदर्शित करती है।

वैधता और विश्वसनीयता के अतिरिक्त, मानक, व्यवहारपरक विज्ञान में प्रभुत्ता परीक्षण के निष्कर्ष की व्याख्या के लिए वैज्ञानित आधार प्रदान करता है। अर्थात मानक, किसी भी परीक्षण पर प्राप्त निष्कर्ष से व्याख्यात्मक त्रुटि को दूर करता है। स्टेनली तथा हापकिन्स (Stanely and Hapkins), 1964 के अनुसार, ''मानक छात्रों के बड़े समूहों की निष्पादकता के आधार पर प्राप्तांकों का किसी अधिक सार्थक पैमाने पर प्रत्यावर्तनों को प्रतिपादित करता मात्र है।'' HVS के मानक को प्रतिशतांक के रूप में व्यक्त किया गया। HVS के प्रत्येक विमा व समग्र के लिए अलग-अलग मानक निकाले गये। इसके अलावा, प्रत्येक वर्ग के लिए (कक्षा IX से लेकर कक्षा XII) अलग-अलग

प्रतिशतांक निकाले गए ताकि मानव-मूल्य के प्रत्येक विमा पर विद्यार्थियों द्वारा प्राप्तांक को त्रुटिहीनता के साथ व्याख्या की जा सके।*

तालिका-6

HVS के कुल प्राप्तांक और विभगत प्राप्तांक के मध्य सहसंबंध गुणांक की तालिका (N=400)

HVS की विमा	नागरिक मूल्य	आर्थिक मूल्य	सामाजिक मूल्य	सांस्कृतिक मूल्य	राजनीतिक मूल्य	मानव मूल्य
नागरिक मूल्य	1	0.593**	0.482**	0.427**	0.308**	0.719**
आर्थिक मूल्य		1	0.656**	0.496**	0.348**	0.820**
सामाजिक मूल्य			1	0.503**	0.330**	0.788**
सांस्कृतिक मूल्य				1	0.524**	0.785**
राजनीतिक मूल्य					1	0.675**
मानव मूल्य समग्र रूप में						1

** P< 0.01

* संक्षिप्त में यदि इस मापनी के व्यावहारिक पक्ष पर गौर किया जाय तो इस बात की जानकारी आवश्यक है कि इसका अंतिम प्रारूप लिकर्ट आधारित पाँच बिंदु पैमाना पर आधारित है जिस पर लक्षित न्यादर्श के व्यक्तियों के प्रतिक्रिया के आधार पर भारतीय संविधान में वर्णित मानव मूल्य का मूल्यांकन किया जाता है। इस मापनी को प्रशासित करने के लिए समय की कोई कठोर सीमा नहीं है, फिर भी इसे पूरा करने के लिए 45 मिनट से 60 मिनट का समय काफी है। इस मापनी पर प्राप्त प्राप्तांक को विमानुसार व समग्र रूप से विभातिज किया जा सकता है। प्राप्तांक की गणना पाँच बिंदु पैमाना पर दिए गए व्यक्तियों के प्रतिक्रिया के आधार पर की जाती हे। चूँकि प्रत्येक विमा के अंतर्गत अनुकूल व प्रतिकूल दोनों प्रकार के पदों को सम्मिलितकिया है। इसलिए प्रतिक्रिया को प्राप्तांक में तब्दील करते समय थोड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। ताकि आकलन में कोई विसंगति न हो।

समग्र रूप में, यदि HVS (मानव मूल्य मापनी) की तकनीकी एवं व्यावहारिक विशेषताओं पर दृष्टिपात किया जाय तो इससे उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों को भारतीय संविधान में अभिहित मानव–मूल्य के प्रति जागरूकता के स्तर का आकलन वैज्ञानिक तरीके से किया जा सकता है। और प्राप्त परिणामों के आधार पर उनमें भारतीय संविधान के प्रति अटूट आस्था को विकसित करने के लिए समन्वित प्रयास किया जा सकता है, ताकि हमारा राष्ट्र मात्र संविधान के पृष्ठों पर लोक तंत्र, समता समानता जैसे मानवीय मूल्यों को उद्घोषित न करे, बल्कि वास्तविकता के धरातल पर भी अपने मानव–संसाधान को इन मूल्यों के प्रति संवेदनशील बनाये।

सन्दर्भ

अनास्तासी, ए. (1968): *साइकॉलोनिकल टैस्टिंग,* न्यूयार्क : द मैक मिलन कंपनी।

क्रोन बैक, एल.जे. (1970) : *एसेंशियल्स ऑफ साइकोलोजिल टैस्टिंग,* न्यूयार्क : हार्पर एंड रॉ।

गिलफर्ड, जे.पी. (1954) : *साइकोमैट्रिक मैथड्स, न्यूयार्क* : मैक ग्रॉ हिल बुक्स कंपनी।

लिकर्ट, आर.ए. (1932) : *टैक्निक् फॉर दि मेजरमैंट ऑफ एटिट्यूट आर्काइवस् ऑफ साइकोलॉजी,* सं. 140।

स्टैनले, जे.सी. (1964) : *मेजरमैंट इन टूडेज स्कूलस्, एंजल वूड क्लिफ,* एन.जे., प्रैंटिस हॉल, इंक।

थर्स्टन, एल.एल., एवम् ई.जे. चेन (1929) : द *मेजरमेंट ऑफ एटिट्यूडस,* शिकागो यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रैस।

रावत, हरिकृष्ण (1998) : *समाजशास्त्र का विश्वकोष,* नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशन्स

शर्मा, आर.डी. (2006) : *भारतीय संविधान में मानव अधिकार और संरक्षण,* नई दिल्ली, सुमित एन्टरप्राइजेज।

सिंह, जे.पी. (2002) : *समाजशास्त्र के मूल तत्व,* नई दिल्ली, प्रैंटिस हॉल ऑफ इंडिया।

एन.सी.ई.आर.टी (1998) : *मानव अधिकार* : स्त्रोत ग्रंथ, नई दिल्ली, एन.सी.ई.आर.टी.

सिंह, ए.के. (2006) : *मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ,* नई दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास।

गुप्ता, एस.पी. (2006) : *आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन,* इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 3, दिसंबर 2008

भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली में अनुशासन का मनोवैज्ञानिक पक्ष तथा उसकी प्रासंगिकता

रश्मि श्रीवास्तव

परिवर्तनशीलता एक प्राकृतिक नियम है, समय के साथ मनुष्य ने अपनी काया, अपने शरीर को परिवर्तित पाया है, विकास के क्रम मे यदि वैज्ञानिक तथ्यों का विश्लेषण करे तो चार पैर पर चलने वाला मानव एक हकीकत है। यह तो विकास व परिवर्तन की माया है कि वह सुगढ रूप से विकसित हो आज सभ्य रूप मं जीवन यापन कर रहा है। यही क्रम सभ्यता के विकास का है। परिवर्तन अपने बहाव में हर कुछ समेटती चलती है और इन समेटी हुई चीजों को नवीन रूप मिलता जाता है लेकिन यहां देखे, नवीनता की जड़ में है तो कुछ पुरातन ही। अर्थात आज जो बड़ा नवीन बड़ा आकर्षक सा है, वह है आखिर किसी पुरातन पर आधारित ही। जब कभी नवीनता के आवेश में इस जड़ की अवहेलना हुई व्यवस्थाएं अपने आप गड़बड़ हुई है। एक निरन्तर गुंथती हुई माला में ऊपर के मोती बड़े चमकीले दिखते है नीचे वाले कुछ पुरातन, पर जरा सोचे! नीचे का मोती जिस पर ऊपर की लड़िया टिकी है यदि हटा दे तो क्या होगा? होगा यह कि बड़ी तेजी से एक-एक कर माला के सारे मोती बिखर जायगे। साथ ही ऊपर का वह विशेष मोती भी, जिसकी चमक में निचले मोतियों की अवहेलना की गयी थी।

किसी भी सामाजिक व्यवस्था के विकास में यह क्रम बड़ा व्यवहारिक है। कोई भी व्यवस्था अपने जड़ में किसी पुरातन तत्व को लिये हुये ही विकसित हो सकी है, तो शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण मुद्दे में सब कुछ नया कैसे हो सकता है। यहां भी पुरातन की जड़ो को अवश्य ही सेहजना, समेटना होगा। भारत की शिक्षा व्यवस्था जिसका

* विभागाध्यक्ष (बी.ए.)-हीरालाल यादव बालिका डिग्री कालेज, सरोजनी नगर, लखनऊ

अपना गौरवपूर्ण इतिहास रहा है, जिसने विश्व सभ्यता को अद्‌भुत दर्शन व ज्ञान दिया है, उसकी विशिष्टताओं को हमे आज की आवश्यकता के अनुरूप अवश्य स्वीकार करना चाहिए।

भारत में 2500 ई.पू. से 500 ई.पू. तक वेदों का वर्चस्व रहा। इतिहासकार इस काल को वैदिक काल कहते है। इस काल में हमारे देश में एक समृद्ध शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ जो कि वैदिक धर्म व दर्शन पर आधारित थी। इस शिक्षा प्रणाली का एक बड़ा ही मजबूत पक्ष गुरूकुलों की अनुशासन व्यवस्था थी। शिक्षा व्यवस्था में अनुशासन वह महत्वपूर्ण पक्ष है जिस पर सीखने सिखाने का सारा क्रम टिका हुआ हैं।

अध्यापक यदि विद्यार्थी को अनुशासित कर सकने में समर्थ हो सका तो समझो सबसे बड़ा कार्य पूर्ण। भारत में आज शिक्षा के क्षेत्र में पुनः अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। ज्ञान-विज्ञान के असीम द्वार शिक्षक व शिक्षार्थी के लिए खुले हुए है। विज्ञान व तकनीकी शिक्षा का ताना-बाना इस तरह फैला है कि ज्ञान की कोई थाह नही, लेकिन विद्यालय परिसर में चाहे वह प्राथमिक स्तर का विद्यालय हो अथवा उच्च शिक्षण संस्थान अनुशासनहीनता आज एक बहुत बड़ी समस्या के रूप में हमारे सामने है। विद्यार्थियो में शिक्षक के लिए आदरभाव नहीं है, वह विद्यालयी नियमों को नहीं मानना चाहता। उच्च शैक्षिक संस्थानों में तो अनुशासनहीनता चरम पर है जिससे अध्ययन-अध्यापन प्रभावित होता है। हमें अपने परम्परागत अनुशासन व्यवस्था के महत्वपूर्ण बिन्दुओं की खोज कर उन पर नवीन व्यवस्थाएँ स्थापित करनी होगी। भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली में बालक के शिक्षा प्रारम्भ होने से उसके समाप्त होने तक प्रत्येक क्रम में अनेक मनोवैज्ञानिक पहलुओं का समावेश इस प्रकार किया गया था कि प्रारम्भिक अवस्था में ही शिक्षार्थी में शिक्षक के प्रति अगाध श्रद्धा व शिक्षक में शिष्य के प्रति असीम प्रेम जागृत हो। श्रद्धा व प्रेम का यही समन्वय तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था की सफलता थी। शिक्षा आरम्भ होने से ले कर समाप्त होने के क्रम का यदि हम विश्लेषण करें तो इस सम्बन्ध में बड़ा ही व्यवहारिक मनोवैज्ञानिक पक्ष हमारे सामने उपस्थित होता है।

शिक्षा व्यवस्था के विभिन्न पक्षों में निहित अनुशासन संदेश, उनका मनोवैज्ञानिक पक्ष तथा प्रासंगिकता :

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली का पूरा ताना-बाना आत्म संयम, त्याग व सेवा भाव के साथ बुना गया था। शिक्षा व्यवस्था के विभिन्न पक्ष जैसे विद्यारम्भ होने के संस्कार, गुरूकुलों की दिनचर्या, शिक्षण प्रक्रिया, शिक्षक का व्यक्तित्व, दण्ड व्यवस्था, नैतिकता की शिक्षा तथा नि:शुल्क शिक्षा व्यवस्था आदि वे महत्वपूर्ण पक्ष थे जिनका व्यवस्थापन ही कुछ इस प्रकार से किया गया था कि शिक्षक व शिक्षार्थी स्वत: अनुशासित होता चला जाए। इनका क्रमिक विश्लेषण निम्नवत है।

उपनयन संस्कार

हिन्दू रीति-रिवाजों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्व वर्ण के शिक्षार्थियो का विद्यारम्भ उपनयन संस्कार से प्रारम्भ होता था। उपनयन संस्कार का उल्लेख अथर्ववेद में भी देखने को मिलता है जहां सूर्य को ब्राह्मण शिक्षार्थी के रूप में अपने आचार्य के पास समिधाए और गुरूदक्षिणा लेकर जाते दिखाया गया है। यहां विद्यार्थी 'उपैम्यहम् भवन्तम' शब्द के उच्चारण से आचार्य को सम्बोधित करता है। जिसका अर्थ है 'मान्यवर मै आपकी सेवा में अपने आप को प्रस्तुत करता हूँ।' गुरुशिष्य के नाम, कुल इत्यादि के विषय में पूछता है। शतपथ ब्राह्मण के उल्लेख के अनुसार आचार्य अपना दाहिना हाथ अपने शिष्य के सिर पर रखता है जो इस बात का प्रतीक है कि वह अपने व्यक्तित्व की छत्र छाया में उसे ग्रहण कर रहा है। ग्रहसूत्रों और स्मृतियों में भी ऐसी ही तमाम विधियों और उपचारों का विस्तार के साथ उल्लेख किया गया है, जिनसे पता चलता है कि उपनयन के अवसर पर बालक की कमर में एक मेखला बांधी जाती थी। ब्राह्मण के लिए यह मेखला मूंज की होती थी। क्षत्री के लिए तांत की तथा वैश्य के लिए ऊन की। बालक के हांथो में ब्राहम्ण वर्ण का होने पर पलाश या बेल की लकड़ी का, क्षत्रिय होने पर न्यग्रोध की लकड़ी का तथा वैश्य वर्ण का होने पर उडुम्बर (गूलर) की लकड़ी का डण्डा दिया जाता था। पर्याय के रूप में किसी भी वर्ण के बालक को किसी भी वृक्ष की लकड़ी का डण्डा दिया जा सकता था। ब्रह्मचारी के वस्त्र पहनाकर छात्र को यज्ञवेदी के सामने आसन पर बैठाया जाता था और वेद मंत्रो से देव आराधाना की जाती थी। तत्पश्चात उसे यज्ञोपवीत पहना कर आचार्य बालक के नाम, कुल आदि के विषय

में पूछताछ कर यह जानने की इच्छा प्रकट करता था कि (कस्य ब्रह्मचारी असि) क्या वह सचमुच उसके आदेशानुसार ब्रह्मचर्य का व्रत लेने को तैयार है। विद्यार्थी द्वारा ब्रह्मचर्य का व्रत लेने की प्रतिज्ञा दुहराए जाने पर (भवत:) आचार्य विद्यार्थी के दाहिने स्कन्ध पर अपने दाहिने हाथ की हथेली रखते हुये शुभकामना से भरे हुए वचनो के साथ कहता है, तेरे श्रद्धालु हृदय में मेरे प्रति श्रद्धा जागृत हो। वह आगे कहता है तेरे हृदय को मै अपने संकल्प की शरण में लेता हूँ, तेरा मन मेरे वश में रहे, मेरी वाणी को तू हृदयगम करने वाला हो और बृहस्पति मेरे साथ तेरा एकीकरण करने वाले हों। ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करा आचार्य विद्यार्थी को सावित्री मन्त्र का श्रवण कराता था। उपनयन संस्कार को बालक का दूसरा जन्म माना गया। उपनयन संस्कार के समय बालक की आयु के विषय में हिन्दुशास्त्रकारों में मतभेद मिलता है। यद्धपि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य बालकों का उपनयन संस्कार क्रमश: 8, 11 तथा 12 वर्ष की अवस्था में किया जाना माना गया है अर्थात उपनयन ऐसी अवस्था में हो जब छात्र स्थितियों को समझ पा रहा हो।

यहाँ इस पूरी विधि का यदि ध्यानपूर्वक अवलोकलन करें तो शिक्षक शिक्षार्थी सम्बन्ध में कई बड़े व्यवहारिक पहलू सामने आते है। संस्कार की पूरी विधि में इस प्रकार की कार्यविधियां है जिनसे बालक में आचार्य के प्रति समर्पण का भाव तथा शिक्षक में एक संरक्षक की जिम्मेदारी का भाव पैदा हो सके। विधारम्भ के साथ ही ब्रह्मचर्य का वृत इस संस्कार का एक महत्वपूर्ण बिन्दु हैं संस्कार के साथ विद्याध्ययन के आने वाले वर्षो में ब्रहम्चर्य पालन का व्रत ले कर शिक्षार्थी संतुलित व अनुशासित जीवन शैली के लिए प्रतिबद्ध हो जाता था। आज माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा पाठ्यक्रमों में ब्रह्मचर्य का यह व्रत तमाम परेशानियों का अन्त कर सकता है। अपने विचारों व आचरण को शुद्ध बनाए रखने की साधना उन दिनों विद्यार्थी के लिए आवश्यक मानी जाती थी। जो कि सदैव उपयोगी है। 'उपनयन संस्कार के क्षण से ही बालक को इस बात की शिक्षा दी जानी प्रारम्भ कर दी जाती थी कि चाहे कैसे ही सम्पन्न कुल से उसका आगमन क्यों न हुआ हो उसे सादगी का ही जीवन व्यतीत करना है और नैराश्य की घड़ी मे भी धैर्य को ही धारण किये रहना है।' हमें, अपनी आज की शिक्षा व्यवस्था में भी विद्यारम्भ से जुड़े इन भावों को अवश्य समाहित किया जाना चाहिए।

गुरुकुलों की दिनचर्या व शिक्षण कार्य

छात्र जीवन गुणों के विकास तथा ज्ञानार्जन के प्रति समर्पित है। नि:सदेह यहां आचरण को प्राथमिकता देनी ही होगी। स्वंय को अनुशासित कर ही इस अवस्था के लक्ष्य प्राप्त हो सकेंगे। प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था में यदि गुरूकुलों की दिनचर्या व शिक्षण पद्धति पर नजर डाले तो कुछ बड़े ही उपयोगी तथ्य सामने आते है। इनमें सबसे विलक्षण बात यह थी कि विद्यार्थीयो को गुरुके आश्रम में रह कर ही विद्याध्ययन करना पड़ता था। यही कारण है कि उसे अन्त:वासी कह कर पुकारा गया है। शिक्षार्थी के लिए अन्त:वासी शब्द का प्रयोग वृहदारण्यक और तैत्तिरीय उपनिषदों में भी किया गया है। इस व्यवस्था से बालक समाज में व्याप्त बुराइयों से स्वत: दूर हो जाता था। गुरुनिवास प्राय: ऐसे पर्यावरण में होते थे जहां, सादगी का साम्राज्य होता था और जिसमें प्रकृति के साथ निकटता का भाव बहुत ही गहरा पाया जाता था। इस वातावरण में शिक्षार्थी बड़ी सहजता से विचारो से शुद्ध व निर्मल बने रह पाते थे। बालमन तो कच्ची मिट्टी के समान है उसे जिस रूप में चाहे ढालना सम्भव है। वह प्राय: अपने आस-पास ही घटनाओं व वातावरण के प्रभाव से ही सीखता है। यदि विद्यालय का वातावरण पूरी तरह से शुद्ध व निर्मल है तो वैचारिक कटुता का प्रवेश कहां से होगा? प्राचीन काल में गुरूकुलों की दिनचर्या भी कठोर व नियमित थी। गुरु शिष्य दोनो ही प्रात: काल उठते थे। आज के विद्यार्थियों के समान अवकाश के दिन सूर्य निकल आने तक सो सकना सम्भव न था। गुरुकुल का शिष्य प्रात: काल उठने के साथ ही आश्रम की सफाई, गुरु के स्नान व पूजा आदि की व्यवस्था स्वयं करता था। जल स्रोतो से जल लाने तथा भिक्षा द्वारा भोजन का प्रबन्ध भी वे स्वंय ही करते थे। इसके बाद शिक्षण कार्य होता था जो कि मध्याहन तक चलता था शिक्षण कार्य भी पेड़ो की छाया में खुले मैदानो में हुआ करता था। मध्यान्ह भोजन के पश्चात गुरुव शिष्य दोनो विश्राम करते थे। विश्राम के बाद पुन: शिक्षण कार्य होता था। इसके बाद शिष्य भोजन की तैयारी और दूध दोहन आदि कार्य में लग जाते थे। सूरज डूबने से पहले संध्या भोजन होता था। रात्रि में शिष्य बारी-बारी से गुरुओं के पैर दबाते थे और उनके सोने के पश्चात स्वयं सोते थे। अर्थात पूरी की पूरी प्रक्रिया सुनिश्चित व सुव्यवस्थित थी जिसमें बालक स्वत: अनुशासित था। यहां बालक के प्राकृतिक, समाजिक एवं आध्यात्मिक तीनो पक्षों के विकास पर बल दिया जाता था। आज आध्यात्मिक पक्ष हमारे विद्यालयों से गायब है। गुरु शिक्षण की अनेक

उत्तम विधियां-अनुरकरण, व्याख्यान, प्रश्नोत्तर, विचार-विमर्श, श्रवण-मनन-नदिध्यासन, तर्क प्रयोग एवं नाटक व कहानी आदि का प्रयोग कर पाठ को प्रभावशाली बनाता था। इन सभी में शिक्षक के स्वयं के व्यक्तित्व की छाप सर्वोपरि थी। वर्तमान शिक्षा पद्धति में विद्यालयी तथा महाविद्यालयी परिसर में अनेक अराजक तत्व देखने को मिलते हैं। छात्र के प्रवेश से लेकर परीक्षा तक की प्रक्रिया में अनेक खामियां है। हमें अपनी शिक्षण संस्थानों से अराजक तत्वों को पृथक करना होगा। विद्यालय परिसर का वातावरण यदि शुद्ध व अनुशासित बन सका तो छात्र स्वत: अनुशासित हो जाएगा। प्राचीन भारतीय शिक्षा संस्थानों में दैनिक क्रिया कलाप व शिक्षण प्रक्रिया इस प्रकार रखी गयी थी कि परिसर का वातावरण शुद्ध व निर्मल रह सका वहां अराजकता का समावेश नहीं हो सका। यही कारण था कि उनके विद्यार्थी स्वत: अनुशासित व आत्म संयमी बन सकें।

दण्ड

दण्ड का शिक्षा व्यवस्था में क्या स्थान हो यह भी एक बड़ा विचारणीय प्रश्न है। छात्र जीवन को अनुशासित बनाने के लिए कुछ नियम कानून अवश्य बनाने होगे। शिक्षार्थी द्वारा उन्हें पूर्ण न किये जाने की सम्भावनाएं भी सदैव रहेगी। ऐसी स्थिति में दण्ड की भी कुछ न कुछ व्यवस्था करनी हेागी। प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में इसके बड़े कड़े नियम देखने को मिलते हैं। छात्र द्वारा किये गये अपराध की पुनरावृत्ति न हो इस उद्देश्य से गुरुद्वारा छात्र को शारीरिक दण्ड भी दिये जा सकने के अधिकार प्रदान किये गये। यद्धपि शिष्य के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार पर ही अधिक बल दिया गया। मनु कहते है 'बिना यातना दिये लोगों को उनके कल्याण की बाते समझायी जानी चाहिए और ऐसा करते समय धर्मानुरागी आचार्य का हमेशा यह कर्तव्य है कि वह बड़े ही मधुर वचनों का प्रयोग करे' एक अन्य स्थान पर वे कहते है 'शिष्य द्वारा अपराध किये जाने पर गुरु छात्र को शारीरिक दण्ड दे सकता है।' वैदिक शिक्षा पद्धति में दण्ड की ये व्यवस्था कुछ बड़े मनोवैज्ञानिक तथ्यों को समाहित किये हुये है। इस शिक्षा प्रणाली में यूं तो गुरु व शिष्य दोनों ही अपने-अपने कर्तव्यों के प्रति सजग है, दोनों ही आत्म संयम के सिद्धान्त पर जीवन यापन करते है। यहाँ कुल मिलाकर दण्ड की आवश्यकता ही नहीं। शिक्षार्थी मुख्यत: अध्यापक के आचरण तथा उसकी क्रियाओं

से प्रेरित होकर कार्य कर रहा है। प्राथमिक दण्ड, अपराध हो जाने पर शिक्षक की नजरों में गिर जाने का ही है। इसमें शारीरिक दण्ड तो वह व्यवस्था है जो गुरु के दु:ख व छोभ का प्रतीक होगा। सम्पूर्ण शिक्षण प्रक्रिया में गुरुस्वंय इतना संयमित, अनुशासित है कि शिक्षार्थी उसके तेज से प्रभावित है। शारीरिक दण्ड अवश्य ही क्रोध मिश्रित होगा। एक संयमित, सदाचारी, मृदुभाषी गुरु की क्रुद्ध भाव भंगिया के साथ प्राप्त शारीरिक दण्ड की कल्पना ही वास्तव में इस पद्धति में शिक्षार्थी के लिए वह अपमानजनक स्थिति है जिससे वह स्वयं को बचाना चाहेगा और किसी भी कारण से अपराध के लिए आगे बढ़े कदमों को रोक सकेगा। आज हमे ऐसे ही आत्मसंयम हेतु प्रेरित अनुशासन की आवश्यकता है।

शिक्षक का प्रभावशाली व्यक्तित्व

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली की सबसे मजबूत कड़ी शिक्षक का स्वयं का व्यक्तित्व है। गुरुका समाज में ऊँचा दर्जा उसके लिये वह परिश्रमिक था जिसके आगे अन्य सभी लाभ निम्न थे। अत: ऊँचे आसन की गरिमा के अनुरूप स्वयं के व्यक्तित्व को बनाए रखना एक शिक्षक को भी प्राथमिकता थी। माता-पिता के पश्चात गुरुकी मान्यता को वेद, उपनिषद, आदि में एकमत से स्वीकार किया गया है। ऋग्वेद में गुरुको 'वायस' कहा गया है जो गूढ़ ज्ञान का ज्ञाता है। अथर्वेद में गुरुको आचार्य कहा गया है। वेदों में आचार्य यम, वरुण, सूर्य तथा चन्द्रमा के लिए प्रयुक्त हुआ है। आचार्य के अतिरिक्त गुरुको उपाध्याय नाम से भी सम्बोधित किया गया है। उपाध्याय का अर्थ है 'उपेत्यअधियतेऽस्मात' अर्थात समीप बैठ कर जिससे विद्या प्राप्त की जाए। तत्व सार में गुरुके सम्बन्ध में कहा गया है- जो समस्त प्राणियों को समान मानते हैं, राग द्वेष रहित है, मन कर्म वचन से दूसरों के दु:ख को दूर करने में रत है, जिनकी बुद्धि सम है, जो भगवानमय है, जो नित्यकर्म में सावधान है, भगवत तत्व को जानते है, वे शरणागत शिष्य को ही नहीं सारी पृथ्वी को दीक्षित कर सकते है। शिक्षक अपने विद्यार्थियों को अपने बालक के समान मानता था। गुरुका अपने प्रत्येक शिष्य के साथ व्यक्तिगत सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध था। आज कक्षा में छात्र संख्या प्राय: इतनी अधिक होती है कि शिक्षक कक्षा के प्रत्येक छात्र के साथ तदात्म्य स्थापित नहीं कर पाता। प्राचीन काल में शास्त्रकारों द्वारा उसे इस बात का भी आदेश दिया गया था कि वह ज्ञान के किसी

भी पक्ष को अपने शिष्य से गोपनीय नहीं रखेगा। वह कभी भी किसी व्यक्ति, संस्था या सम्प्रदाय की अधीनता में काम नहीं करता था, परन्तु उसका बड़ा ही आदर व सम्मान था। राजा तक को उसके समक्ष नतमस्तक हो उसका सम्मान ही करना पड़ता था। वह एक ऐसा व्यक्ति न था जिसे किसी ऊंचे अधिकारी ने अपने अधीनस्थ कर्मचारी के रूप में नियुक्त कर रखा हो। वह पढ़ाता इस लिए था क्योंकि पढ़ाना उसका धर्म था। इन सबका सीधा प्रभाव यह हुआ कि समाज व राज्य में आदरणीय शिक्षक वर्ग शिक्षार्थी के लिए स्वत: आदर का पात्र बन गया। आज एक बार फिर यदि समाज में शिक्षकों का दर्जा सम्मानजनक बनाया जाए तो अनुशासन के क्षेत्र में बड़ी सफलता मिलेगी। आज शिक्षण कार्य अन्य रोजगारों की तरह एक व्यवसाय मात्र है। व्यवसाय की गरिमा चूंकि आर्थिक लाभ से मापी जाती है। अत: शिक्षक भी अधिकतम आर्थिक लाभ को तत्पर है। इसका एक बड़ा सहज मार्ग उसने ट्यूशन के रूप में विकसित किया है। ट्यूशन से प्राप्त अर्थलाभ कक्षा में व्यय श्रम से प्राप्त लाभ से अधिक है इसलिए कक्षा में छात्र हित से उसने मुंह मोड़ लिया है। आज का शिक्षक भी कक्षा में शिक्षण की खानापूर्ति कर अपनी शारीरिक शक्ति व बौद्धिक क्षमता ट्यूशन के लिए बचाकर रखता है। ट्यूशन पद्धति में अभिभावक से प्राप्त रकम के बदले शिक्षण से शिक्षक का दर्जा एक श्रमिक का हो गया है, जिसका कार्य किसी भी तरह पाठ्यक्रम में निर्धारित पाठों को शिक्षार्थी के मस्तिष्क तक पहुंचाना है। अब इस पूरी प्रक्रिया में आदरभाव बचा ही कहां? रहा अध्यापक वो तो शिक्षार्थी के अभिभावक द्वारा पारिश्रमिक पर रखा गया श्रमिक मात्र। अपने आप शिक्षार्थी ऊंचे व शिक्षक नीचे दर्जे पर।

सरकारी विद्यालयों और महाविद्यालयों के शिक्षकों की सामाजिक आर्थिक स्थिति तो कुछ हद तक ठीक-ठाक है किन्तु स्ववित्त पोषित संस्थानों में सभी कुछ गडबड़ है कम वेतन, नौकरी की असुरक्षा व प्रबन्ध समिति का दबाव, ये कुछ ऐस मुद्दे हैं जिनके नीचे दबे शिक्षक का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली हो ही नहीं पाता कि वह शिक्षार्थियों पर अपना प्रभाव स्थापित कर सकें। विद्यालय, महाविद्यालय प्रबन्धन इस दिशा में उन्हें व्यापक अधिकार भी नहीं प्रदान करते। इस स्थिति में अनुशासन का जिम्मा प्रबन्ध समिति का, शिक्षार्थी के अनुशासानहीन कृत्यों पर कार्यवाही का अधिकार प्रबन्ध समिति के पास। प्रबन्ध समिति चूंकि विद्यार्थियों से फीस के रूप में ली गयी मोटी रकम के नीचे दबा पड़ा है। अत: वह मुद्दों को सुलझाने के बजाए मामला किसी तरह निपट

जाने की नीति पर कार्य करता है। शिक्षार्थी स्वन्तत्र, अध्यापक परतन्त्र, अभिभावक परेशान बालक, काबू में नहीं है, क्या करें? सब कुछ अव्यवस्थित व गड़बड़। आज एक बार फिर यदि अध्यापक का सामाजिक दर्जा आदरणीय स्थापित किया जाए, जिसमें समाज की परिवर्तित स्थिति में अर्थिक लाभ भी समाहित करने होंगे तो स्थितियाँ कुछ हद तक काबू में आ सकेंगी। शिक्षक को व्यापक अधिकार व गरिमामय सामाजिक व्यावसयिक लाभ देने ही होंगे जिससे समाज का बुद्धिजीवी वर्ग इस व्यवसाय को अपना सके तथा इस व्यवसाय के सम्मान को भी बचाए रख सके। निश्चय ही तब शिक्षक आत्मविश्वास व प्रभावशाली व्यक्तित्व से परिपूर्ण हो सकेगा और शिक्षार्थी पर अपना प्रभाव स्थापित कर उसे अनुशासित भी कर सकेगा। शिक्षक प्रशिक्षक कार्यक्रमों में भी भावी शिक्षकों को इस प्रकार प्रशिक्षित करना होगा कि वे आत्मसंयमी, ज्ञानी व आदर्श व्यक्तित्व के स्वामी बन सकें। एक अनुशासित शिक्षक ही तो छात्र को अनुशासित कर सकेगा।

निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था

'यह बात की बड़ी विवेक संगत थी कि शिक्षण के कार्य को हर प्रकार के राजकीय या दलगत राजनीति के नियन्त्रण व प्रभाव से सर्वथा मुक्त ही रखा गया था। राजा के लिए यह विधान था कि वह विद्धानों द्वारा स्वन्तत्र रूप से पठन-पाठन के काम में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगा। गुरु किसी भी व्यक्ति, संस्था या सम्प्रदाय की अधीनता में काम नहीं करता था। इसके बाद भी वह समाज में आदर व सम्मान का अधिकारी था। प्राचीन काल की निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था का अपना विशेष महत्व था। इसके अन्तर्गत हिन्दू बालक के शिक्षण को उसके अपने परिवार की स्थिति के ऊपर किसी भी अवस्था में निर्भर नहीं बनाया गया था। ज्ञान के मन्दिर राजा व रंक दोनों के लिए समान रूप से खुले रखे गये थे। इस प्रकार शिक्षण का काम न तो लाभ की वृत्ति को रखने वालो के हांथो में केन्द्रित था, न ही वह शासक वर्ग या राजतंत्र पर आधारित था और न ही इन दोनो का उसके ऊपर कोई नियन्त्रण था। सच तो यह है कि राजा-महाराजा को भी आश्रमों में प्रवेश के पूर्व आचार्य के सम्मुख अपने मस्तक को ही नट करना पड़ता था। विद्यादान व ज्ञानार्जन में किसी प्रकार की भौतिक लालसा का अभाव अवश्य ही मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बड़ा मूल्यवान सिद्ध हुआ होगा। यही वह कारण था जिससे तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में तमाम दोषों का समावेश न हो सका।

किसी भी आर्थिक वर्ग का छात्र समान रूप से शैक्षिक क्रिया-कलापों में भाग लेता रहा। शिक्षक के कार्य में शिक्षार्थी के परिवार के आर्थिक स्तर का दबाव न हो सकने से शिक्षक भी स्वतन्त्र व समान रूप से बालको से अनुशासित कार्य कलाप सहजता से करा सका।

नैतिक शिक्षा

हिन्दू शिक्षा-प्रणाली के अन्तर्गत, गुरुका कर्तव्य विद्यार्थी में बौद्धिक संस्कारों के साथ-साथ नैतिक संस्कारों का प्रवेश कराना भी था। आज बौद्धिक व नैतिक विकास सामंजस्य बहुत अच्छा नहीं है। शिक्षा मनोवैज्ञानिक ड्यूवी इस असमायोजन की हानि का विश्लेषण करते हुए कहते है आधुनिक स्कूलों में बौद्धिक प्रशिक्षण के साथ नैतिक प्रशिक्षण का तथा ज्ञानार्जन के काम के साथ चरित्रोन्नयन के काम का जो दु:खदायी पार्थक्य है वह सहज ही इस बात का परिचय करा देता है कि स्कूलों की ऐसी सामाजिक संस्थानों के रूप में कल्पना करने और उसे ढालने के काम में हम असमर्थ रह गये है जो समाज के जीवन तथा उसके जीवन मूल्यों का प्रतिनिधित्व करने लग जाती है। नन भी नैतिक व बौद्धिक विकास के समान्जस्य पर बल देते हुये कहते हैं, विद्यालय की कल्पना मूलत: एक ऐसे केन्द्र के रूप में नहीं की जानी चाहिए जहां मात्र किसी विषय का ही ज्ञान अर्जित किया जाता है, वरन एक ऐसे केन्द्र के रूप में उसकी कल्पना की जानी चाहिए जहाँ पर बालकों को व्यवहारिक जीवन के ऐसे क्रियाकलापों की शिक्षा भी दी जाती हो जो लोगों के सांसारिक जीवन के लिए स्थाई महत्व का हो तथा आगे चलकर उनके जीवन में काम आ सकें। प्राचीन काल में भारतीय शिक्षा पद्धति में विद्यार्थी के बौद्धिक और नैतिक विकास, दोनों ही उद्देश्यों पर बड़े ही मौलिक ढंग से विचार किया गया था और उन्हें परस्पर पूरक अंगों के रूप में देखा गया था।

कुल मिलाकर यहां एक तथ्य बड़ी स्पष्टता से प्रकाशित होता है कि हमारी प्राचीन शिक्षा-प्रणाली का ताना-बाना कुछ इस प्रकार के सिद्धान्तों पर बुना गया था कि गुरुकुलों की उत्कृष्ट अनुशासन व्यवस्था हमारे सामने आ सके। जन कोलाहल से दूर प्रकृति के सुरम्य गोद में स्थापित गुरुकुल शिक्षक व शिक्षार्थी को शुद्ध प्राकृतिक वातावरण दे सकने में सफल रहे। शिक्षा पर राज्य का नियन्त्रण न होने से शिक्षक को अपने कार्य की पर्याप्त स्वतन्त्रता मिल सकी। शिक्षक को उच्च सामाजिक दर्जा प्रदान

कर अन्य सामाजिक आर्थिक लाभों को उसके शिक्षण कार्य के समक्ष इतना तुच्छ कर दिया गया कि शिक्षक के लिए किसी भी अन्य सामाजिक आर्थिक लाभों का कोई मूल्य न रह सका। यही कारण था कि शिक्षक अपने पद की गरिमा के अनुरूप आचरण कर देश और समाज के साथ-साथ अपने शिक्षार्थियों के लिए ऊँचे आदर्श स्थापित कर सके। बालक का आचरण चूंकि क्रिया-प्रतिक्रिया के मनोविज्ञान पर आधारित है। अत: शिक्षार्थियों द्वारा अनुशासित जीवन यापन बड़ा सहज हो सका। उच्च आदर्शों, आत्मसंयम व शुद्ध आचरण से सुसंस्कृत शिक्षक के सानिध्य में रहने वाला शिक्षार्थी स्वत: अनुशासित होता चला गया। यहां शिक्षार्थी के परिवारों की आर्थिक स्थित का कोई प्रभाव गुरुकुलों पर न पड़ पाना भी बड़ा उत्साहवर्धक था। शिक्षक, शिक्षार्थी के अभिभावक के पद व अर्थ की ऊंचाई से मुक्त था, जिससे वह भी सहजता से सभी शिक्षार्थियों के साथ समान व्यवहार कर सका। शिक्षा प्रारम्भ करने के साथ ही इसमें किये जाने वाले संस्कारों की भी शिक्षार्थी को अनुशासित रखने में बड़ी अहम भूमिका रही। उपनयन जैसे संस्कार बालक को आने वाले जीवन में अपेक्षित संयम व नियन्त्रण का ऐसा पाठ पढ़ा जाते थे कि विद्याध्ययन आरम्भ करने के पूर्व ही वह मानसिक रूप से भावी अनुशानित जीवन शैली के लिए तैयार हो जाता था। इस संस्कार के साथ ही वह उत्साहित भी होता था कि उसे किन्हीं विशिष्ट कार्य हेतु, विशिष्ट आचरण करना है। शैक्षिक उद्देश्यों और पाठ्यक्रम में नैतिकता का पाठ वह महत्वपूर्ण बात थी, जिससे गुरुकुलों में अनुशासित जीवन शैली स्थापित हो सकें। विषयों और तथ्यों के ज्ञान के साथ आचार्य बालक को नैतिकता का भी पाठ पढ़ाते थे। गुरुकुलों की दिनचर्या का पूर्व निश्चित व संयमित होना भी बालक को अनुशासित रखने में सहायक हो सका। विभिन्न सामाजिक सहूलियतों व आमोद-प्रमोद के साधनों का गुरुकुलों में उपलब्ध न होना भी छात्रों के आत्मसंयम में सहायक था। हमें अपनी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में अवश्य ही इन बिन्दुओं को समाहित करना होगा। शिक्षार्थी को जब तक हम संयमित जीवन शैली के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं करेंगे, शिक्षक जब तक स्वंय एक आदर्श व्यक्तित्व न होंगा, विद्यालयों में वास्तविक अनुशासन स्थापित न हो सकेगा। हमारी प्राचीन शिक्षा प्रणाली के यही तो वे दो महत्वपूर्ण बिन्दु है जिनका आधार ले कर वह ऊँचाई तक पहुँच सकी। हम अपने आज के विद्यालयों में व्याप्त अनुशासनहीनता की समस्या को इन्ही उपायों से समाप्त कर सकेंगें।

सन्दर्भ

अथर्ववेद संहित (1990): पं. रामस्वरूप शर्मा गौड़ द्वारा संपादित, खंड-।।, चौखम्बा, विद्या भवन, वाराणसी।

शतपथ ब्राह्मण - जे. एग्गेलिंग द्वारा अनुवादित।

प्रभु पंधारी नाथ एच. (1994): *हिन्दू समाज की व्यवस्था,* पापुलर प्रकाशन, मुंबई, पृ. 137

मनुस्मृति (2005) : ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी द्वारा अनुवादित, रणवीर प्रकाशन हरिद्वार, पृ. 52

प्रभु पंधारी नाथ एच. - पूर्व संदर्भित पृ. 158-159

ड्यूवी जान (1909), एजुकेशन इट्स डाटा एंड फर्स्ट प्रिसिंपल्स, संशोधन संस्करण, अर्नाल्ड, लन्दन, पृ. 242-243

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 3, दिसम्बर 2008

''स्वतंत्रता के बाद उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा का विकास''

रमेश धर द्विवेदी* और प्रतिमा**

नारी को सृष्टि का आधार माना गया है। देव तत्व की उपस्थिति के कारण ही भारतीय संस्कृति में नारी का वंदन कर उसे ईश्वर के समकक्ष स्वीकार किया गया है। नारी को दुर्गा के रूप में शक्तिस्वरूपा, लक्ष्मी के रूप में वैभवस्वरूपा तथा सरस्वती के रूप में ज्ञानस्वरूपा मानकर उसकी आराधना की जाती है। पत्नी को अर्धांगिनी माना गया व उसे माता के रूप में सम्पूर्ण समाज की पोषिका माना गया। ईश्वर के अतिरिक्त केवल स्त्री में ही सृजन करने, जन्म देने की क्षमता होती है।

स्त्री केवल परिवार की निर्मात्री ही नहीं, अपितु इतिहास साक्षी है अपनी विलक्षण प्रतिभा, बुद्धि व त्याग से उसने राष्ट्र निर्माण में अहम भूमिका निभायी, जिसमें सभ्यता व संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार हुआ। डॉ. राजेन्द्र के शब्दों में- ''राष्ट्र की प्रगति व सामाजिक स्वतन्त्रता में महिलाओं की अहम् भूमिका है। सभ्यता के उदय से ही मनुष्य के लिए मनुष्य का विकास करना ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य रहा है। यह कार्य स्त्रियों के द्वारा ही होता आया है। स्त्रियां ही प्राचीन धरोहर को अगली पीढ़ी तक पहुंचाती हैं तथा वे ही परिवार व समाज में इस विरासत को सुरक्षित रखती है।''

''किसी भी समाज का स्वरूप उसकी शिक्षा व्यवस्था के स्वरूप को निर्धारित करता है और इस व्यवस्था का स्वरूप समाज के स्वरूप को निर्धारित करता है।'' बॉयड एच. बोल्ड का यह कथन बहुत ही स्टीक है। शिक्षा एक ऐसी कसौटी है, जिसके आधार पर निर्धारित हो सकता है कि समाज न्याय संगत है या नहीं। जिस समाज ने स्त्री को शिक्षा का अधिकार दिया, उसने प्रगति की तथा समाज खुशहाल रहा। कुछ विद्वानों का मानना है कि विकसित राष्ट्रों में महिलाओं की शिक्षा का स्तर बहुत ऊँचा है परंतु वास्तविकता यह है कि महिलाओं की शिक्षा का स्तर ऊँचा होने के कारण

* वरिष्ठ प्रवक्ता-शिक्षा विभाग, उदय प्रताप कालेज, वाराणसी (उ.प्र.)
** प्रवक्ता-शिक्षा विभाग, सी.आर.डी. कालेज, गोरखपुर

ही वे राष्ट्र विकसित है। विश्व बैंक के एक अध्ययन (1991) से यह तथ्य उजागर हुआ कि बालिका को शिक्षित करना कोई दया या दान नहीं है बल्कि यह एक अर्थशास्त्रीय विचार है और यदि विकासशील देश निर्धनता दूर करना चाहते हैं तो उन्हें बालिकाओं को शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। बालिकाओं की शिक्षा पर किए गये विनियोजन का आर्थिक व सामाजिक लाभ बालकों की शिक्षा पर किए विनियोजन से अधिक है। शिक्षित बालिकाओं को रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं। तथा वयस्क होने पर वह अधिक उत्पादक हो जाती हैं। शिक्षा व रोजगार प्राप्त करके वह छोटा परिवार पंसद करती है, वह बच्चों के स्वास्थ्य, पोषण व शिक्षा के प्रति अधिक जागरूक व प्रयासरत रहती है। विभिन्न अनुसंधानों से यह सिद्ध हुआ है कि बालिकाओं की शिक्षा से विकासशील रहती है। विभिन्न अनुसंधानों से यह सिद्ध हुआ है कि बालिकाओं की शिक्षा से विकासशील राष्ट्रों को निर्धनता, जनसंख्या वृद्धि, कुपोषण व स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का समाधाना करने में सहायता प्राप्त होगी। विश्व बैंक का यह अध्ययन भारत पर अक्षरश: लागू होता है। यहाँ केरल एक ऐसा प्रांत है जहाँ शत-प्रतिशत साक्षरता है। यहां विवाह के समय महिलाओं की औसत आयु 22 वर्ष होती है। वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार केरल में शिशु मृत्यु 17 प्रति हजार थी, जबकि राष्ट्रीय दर 80 प्रति हजार है। केरल में जनसंख्या वृद्धि दर 1.34 प्रतिशत है जबकि राष्ट्रीय दर 2.14 प्रतिशत है। यहाँ प्रति हजार पुरूष 1036 महिलाएं हैं, जबकि राष्ट्रीय दर 927 है।

ये आँकड़े महिला साक्षरता के कारण संभव हुए हैं इसके विपरीत बिहार, राजसथान, उत्तर-प्रदेश, मध्य-प्रदेश आदि राज्यों में महिला साक्षरता दर निम्न है। उत्तर-प्रदेशमें विवाह के समय बालिका की औसत आयु 19 वर्ष होती है, जबकि कुछ बालिकाओं का विवाह 12 वर्ष से भी कम आयु में हो जाता है। यहाँ स्वास्थ्य दशाओं का स्तर निम्न है तथा जन्म दर, मृत्यु दर तथा जनसंख्या वृद्धि दर आदि सभी राष्ट्रीय दर से ऊपर है। इस प्रकार राष्ट्र की विकराल समस्या जनसंख्या की तीव्र वृद्धि को प्रत्यक्ष संबंध महिलाओं की शिक्षा से है।

स्वतंत्रता के पश्चात् हमारे संविधान निर्माताओं तथा आधुनिक भारत के शिल्पियों ने यह अनुभव किया कि महिलाओं में राष्ट्रीय, सामाजिक व सांस्कृतिक चेतना जागृत किये बिना समाज कभी उन्नतिशील नहीं हो सकेगा। अत: महिलाओं के स्तर की

पुनर्स्थापना के प्रति कटिबद्ध हमारे संविधान निर्माताओं ने लिंग भेद किए बिना स्त्री पुरूषों को समान अधिकार प्रदान किये। महिलाओं के स्तर में समानता लाने का उद्देश्य व भाव मौलिक अधिकारों व राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में छिपा हुआ है।

महिलाओं के स्तरोन्नयन हेतु हमारे संविधान में व्यवस्था होने के पश्चात् भी भारत विशेष रूप से उत्तर-प्रदेश में स्त्री शिक्षा की स्थिति अत्यंत दयनीय है। उत्तर-प्रदेश का स्त्री साक्षरता में राज्यों एवं केंद्र शासित प्रदेशों के मध्य 28वां स्थान है। इसके बाद सिर्फ बिहार एवं राजस्थान का ही स्थान आता है।

स्वतंत्रता से पूर्व स्त्री शिक्षा

भारत में स्त्री शिक्षा संसार के अन्य देशों की अपेक्षा अत्यंत प्राचीन एवं महत्वपूर्ण है। यहां आरंभ से स्त्रियों को शिक्षा प्रदान की जाती रही है। भारत के प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करने से हमें अनेकानेक विदुषी महिलाएं मिलती हैं, ये नारियां अद्भुत तर्कशक्ति, दार्शनिक ज्ञान, युद्ध-कौशल, शासन-व्यवस्था जैसे क्षेत्रों में अपनी महारत प्रदर्शित करती हैं और इतिहास में अपने लिए महत्वपूर्ण स्थान बना पाती हैं। इन स्त्रियों में विश्ववरा, अपाला, घोषा, लापामुद्रा, अदिति, मैत्रेयी आदि हैं। प्राचीन ग्रन्थों में ऐसी अनेक दार्शनिक महिलाओं एवं ब्रह्मवादिनी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन शिक्षा के लिए समर्पित कर दिया। इसका प्रमुख कारण यह था कि वैदिक काल में महिलाओं को पुरूषों के समान शिक्षा का अधिकार प्राप्त था। उनका भी उपनयन संस्कार होता था। परिवार और समाज में उनको गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था।

वैदिक काल के उपरांत धीरे-धीरे स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आने लगी। शिक्षा की सुविधाएं कम होती गयीं तथा सार्वजनिक जीवन में भाग लेने की स्वतंत्रता सीमित हो गयी। विवाह छोटी आयु में होने लगा जिससे उनकी शिक्षा के अवसर उत्तरोत्तर कम होते गये। उपनयन संस्कार, यज्ञ आदि में भाग लेने पर रोक लगा दी गयी।

जैन एवं बौद्ध धर्म में आरंभ में स्त्रियों को लेकर एक उपेक्षा का भाव था। किंतु बाद में उन्हें संघ में शामिल कर उन्हें शिक्षा प्राप्त करने की आज्ञा दी गयी। संघ के प्रयासों से शिक्षा व्यवस्था संतोषजनक रही। अनेक उच्च कोटि की विदुषी महिलाएं उत्पन्न हुईं, जिन्होंने धार्मिक व दार्शनिक क्षेत्र में समाज का नेतृत्व किया। शुभा, अनुपमा, सुमेधा आदि इस समय की विदुषी स्त्रियाँ थी।

मध्य युग में पर्दा प्रथा के कारण स्त्री शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं हो पायी। इसके साथ ही साथ बाल-विवाह ने भी शिक्षा को प्रभावित किया। इस समय सामान्य वर्ग की छोटी बालिकाएं मस्जिदों से संलग्न मकतबों में शिक्षा ग्रहण करती थीं। राजघरानों एवं अमीरों की बालिकाओं को घर पर शिक्षा दी जाती थी।

कम्पनी शासन काल में स्त्री शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। कारण, कम्पनी को अपने कार्यालयों के लिए शिक्षित स्त्रियों की आवश्यकता नहीं थी।स्त्री शिक्षा हेतु प्रारंभिक प्रयास ईसाई मिशनरियों ने किया। 1854 में वुड ने अपने घोषणा पत्र में स्त्री शिक्षा के महत्व को स्वीकारते हुए उसे प्रोत्साहित करने का सुझाव दिया। इसके लिए उन्होंने स्थापित संस्थाओं को सहायता अनुदान देने और नये विद्यालयों को खोलने की संस्तुति की। इन सुझावों का उचित रीति से पालन नहीं किया गया और स्त्री शिक्षा का पिछड़ापन बरकरार रहा। 1882 में गठित भारतीय शिक्षा आयोग ने स्त्री शिक्षा के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए कई सुझाव दिये, जिसमें सरल शर्तों पर अनुदान देना, व्यावहारिक पाठ्यक्रम का निर्माण , छात्रवृत्तियाँ प्रदान करना, महिला छात्रावासों का निर्माण, महिला शिक्षिका, निरीक्षिकाओं आदि की नियुक्ति थी।

इन सुझावों के परिणामस्वरूप स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति दिखाई दी। ब्रिटिश काल में हंटर आयोग के पश्चात् लार्ड कर्जन एवं सैडलर कमीशन ने भी स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित करने हेतु महत्वपूर्ण सुझाव दिये। इसी दौरान राष्ट्रीय आंदोलन प्रारंभ होने से भारतीयों ने भी शिक्षा के प्रसार का कार्य किया। रवीन्द्रनाथ टैगोर, गोपाल कृष्ण गोखले, महर्षि कर्वे, श्रीमती एनी बेसेण्ड आदि ने शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया, जिसके परिणामस्वरूप स्त्री शिक्षा में प्रगति दिखायी देती है। 1946-47 में शिक्षा प्राप्त करने वाली कुल लड़कियों की संख्या 4.3 मिलियन हो गयी।

15 अगस्त, 1947 को हमारा देश स्वतंत्र हुआ शिक्षा को महत्वपूर्ण अंग मानकर भारत सरकार ने शिक्षा और विशेष रूप से स्त्री शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् स्त्री शिक्षा की दिशा में स्तरवार हुई प्रगति का विवरण अग्रांकित पंक्तियों में दिया गया है-

प्राथमिक शिक्षा

हमारे संविधान की 45वीं धारा में उल्लिखित था कि 6से 14 वर्ष की आयु तक के बालक एवं बालिका को संविधान लागू होने के 10 वर्ष के अंदर अनिवार्य एवं नि:शुल्क

शिक्षा की व्यवस्था की जायेगी। स्वतंत्रता के पश्चात् उत्तर-प्रदेश में स्कूल जाने योग्य बच्चों का 25.8 प्रतिशत ही शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। शेष बालकों की शिक्षा के लिए कोई प्रबंध नहीं था। अत: सरकार ने 2200 प्राथमिक विद्यालय खोले। इसके अतिरिक्त अन्य विकास योजनाएं भी चलायीं गयीं। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में प्राथमिक शिक्षा को प्राथमिकता दी गयी और शिक्षा पर व्यय किये जाने वाले राशि का एक बड़ा हिस्सा प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किया गया। भारत सरकार ने शिक्षा के विभिन्न स्तरों की जांच हेतु शिक्षा आयोग (1964-66) का गठन किया । आयोग ने एक नवीन शैक्षिक संरचना प्रदान की, जिसमें 1 से3 वर्ष पूर्व प्राथमिक शिक्षा 4से 5 वर्ष की निम्न प्राथमिक शिक्षा और 3 वर्ष की उच्च प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था हुई। इन्होंने शैक्षिक अवसरों की समानता पर विशेष जोर दिया। इन सबके परिणामस्वरूप प्राथमिक शिक्षा में अच्छी प्रगति हुई। 1965-66 में कुल प्राथमिक विद्यालयों की संख्या हो गयी 60469, जिसमें 9311633 विद्यार्थी थे। इन विद्यार्थियों में 3263610 बालिकाएं थीं, जो 1960-61 की तुलना में 4 गुनी और 1955-66 की तुलना में 7 गुनी रही।

प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में यद्यपि आंकड़ों में वृद्धि दिखाई दे रही है किंतु यह वृद्धि पर्याप्त नहीं है। इस समय शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या भी विकराल थी। सरकार ने अपव्यय एवं अवरोधन को रोकने एवं अनिवार्य सार्वभौमिक शिक्षा की व्यवस्था हेतु पुन: पंचवर्षीय योजनाओं में प्राथमिक शिक्षा को प्राथमिकता दी। इसको प्राप्त करने के लिए कई उपाय किये। जैसे- विद्यालयों का अच्छा संगठन, पाठ्य-पुस्तकों का नि:शुल्क वितरण, मध्यान्ह भोजन कार्यक्रम, भवनों की व्यवस्था एवं महिला शिक्षिकाओं की नियुक्ति आदि। 1979 में जनता सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की, जिसमें उसने 10 वर्ष में निरक्षरता को दूर करने का लक्ष्य रखा। किंतु दुर्भाग्य से उसी समय जनता की सरकार गिर गयी और उसकी योजना धराशायी हो गयी, जिसका परिणाम शिक्षा के क्षेत्र में गिरावट के रूप में दिखा। यह भी देखा गया कि पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के मध्य की शिक्षा का प्रसार कम हुआ। अत: भारत सरकार ने जनवरी, 1985 में ''नयी शिक्षा नीति'' के निर्धारण का संकल्प लिया और अगस्त, 1985 में 'शिक्षा की चुनौती' नामक दस्तावेज प्रस्तुत किया। जिस पर राष्ट्रव्यापी विचार-विमर्श किया गया और मई, 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया।

इस शिक्षा नीति में मानवतावादी आदर्शों की पुर्नस्थापना करने का निश्चय किया गया। इसमें कहा गया कि शिक्षा सभी के लिए है। नई शिक्षा नीति 1986 का प्रमुख उद्देश्य शैक्षिक अवसरों की समानता लाना है। इनका कहना था कि सरकार ने स्वतंत्रता के पश्चात् जो शैक्षिक सुविधाएं प्रदान की है, उनसे समाज के सभी वर्ग लाभान्वित हुए हैं। लेकिन अब भी वर्गीय विषमता विद्यमान है। अत: इस विषमता को दूर करने के लिए शैक्षिक अवसरों की समानता उपलब्ध करायी जाए। विशेष रूप से पांच वर्ग उपेक्षित है–

1. महिलाएँ, 2. अनुसूचित जातियाँ, 3. अनुसूचित जनजातियाँ, 4. अल्पसंख्यक वर्ग और 5. शारीरिक रूप से विकलांग वर्ग।

नई शिक्षा नीति में महिलाओं की शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है। ये शिक्षा का उपयोग महिलाओं की स्थिति में बुनियादी परिवर्तन लाने हेतु करना चाहते हैं।

नई शिक्षा नीति, 1986 में प्रारंभिक शिक्षा के क्षेत्र में दो बातों पर बल दिया गया–

1. चौदह वर्ष तक सभी बालकों की विद्यालय में भर्ती और उनका विद्यालय में टिके रहना।
2. शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार।

इस नीति के अनुसार 'आपरेशन ब्लैक बोर्ड' अभियान शुरू किया गया, जिसमें प्रत्येक विद्यालय के लिए दो कमरे, ब्लैक बोर्ड, नक्शे, चार्ट, खिलौने और कम से कम दो अध्यापक की व्यवस्था हो। विद्यालय रहित ग्रामों में अनौपचारिक शिक्षा का जाल बिछाया जाएगा। 'नई शिक्षा नीति, 1986' की समीक्षा हेतु गठित राममूर्ति समिति ने शिक्षा को जीवन से जोड़ने व प्राथमिक शिक्षा हेतु पर्याप्त व अधिक धन की व्यवस्था करने को कहा।

सातवीं एवं आठवीं पंचवर्षीय योजना में बालिका नामांकन में वृद्धि पर विशेष जोर दिया और यह निश्चित हुआ कि प्रत्येक बच्चे को अपने घर से एक किलोमीटर की परिधि में प्राथमिक विद्यालय और तीन किलोमीटर की परिधि में उच्च प्राथमिक विद्यालय उपलब्ध कराया जायेगा।

विभिन्न आयोगों एवं पंचवर्षीय योजनाओं में अनिवार्य एवं नि:शुल्क तथा सार्वभौमिक शिक्षा के प्रसार एवं विशेष रूप से बालिका नामांकन बढ़ाने पर जोर दिया गया।

जिसका परिणाम विद्यालयों की संख्या एवं विद्यार्थियों के नामांकन में वृद्धि हुई। परिणामत: प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता हुई। अत: सरकार ने अनेक नार्मल स्कूल खोले एवं बी.टी.सी. और जे.बी.टी. का प्रशिक्षण भी किया प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में 1948 से 2007 के मध्य हुई प्रगति को निम्न तालिका से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

प्राथमिक शिक्षा

वर्ष	संस्थाओं की संख्या	नामांकन	
		बालिका	कुल
1948–49	26337	314428	2103114
1955–56	31898	484596	2737827
1965–66	604469	3263610	9311633
1975–76	65552	4259289	11657931
1985–86	74051	3545142	10782147
1996–97	92554	4772000	1306000
2006–07	122941	12209680	25649289

स्रोत- भारत सरकार, शिक्षा की प्रगति, 1948–59, 1955–56, 1965–66, 1975–76, 1985–86, 1996–97, 2005, 2007

स्पष्टता 1948–2007 के मध्य प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। इस दौरान विद्यालयों की संख्या में 4 गुने की वृद्धि हुई। वहीं नामांकन में 30 गुने की वृद्धि हुई। यह एक आश्चर्यजनक उपलब्धि है। 1948–49 में जहाँ 11 लड़कों पर एक लड़की का नामांकन होता था, वहीं आज यह लगभग बराबर का हो गया है। आज कुल नामांकन का 46.86 प्रतिशत नामांकन लड़कियों का होता है।

तालिका से स्पष्ट है कि स्वतंत्रता के पश्चात् बालिका शिक्षा का तीव्र गति से विकास हुआ है। 1948 से 2007 के मध्य शिक्षण संस्थाओं में एवं बालिका नामांकन दोनों में लगभग चौदह गुने की वृद्धि हुई।

उच्च प्राथमिक शिक्षा

वर्ष	संस्थाओं की संख्या	नामांकन	
		बालिका	कुल
1948–49	2193	15782	275720
1955–56	3640	59358	472025
1965–66	6543	211661	1048052
1975–76	10626	346817	1550980
1985–86	16434	599268	2324077
1996–97	20436	958000	3050000
2006–07	46028	3162822	6513228

स्रोत–भारत सरकार, शिक्षा की प्रगति 1948–59, 1965–66, 1975–76, 1985–86, 1996–97। NUEPA (2007).

1948–49 में जहां 12 प्राथमिक विद्यालयों पर एक उच्च प्राथमिक स्कूल होते थे, वहीं आज यह 2.8 प्राथमिक विद्यालयों पर एक हो गया है। स्वतंत्रता के समय बालक बालिका अनुपात 17:1 का था जो, अब लगभग बराबर हो गया है। सातवें शैक्षिक सर्वेक्षण एवं भारत में प्रारंभिक शिक्षा की स्थिति NUEPA (2007). से स्पष्ट है कि उच्च प्राथमिक स्तर पर कुल नामांकन का 48.56 प्रतिशत बालिका नामांकन होता है। उत्तर–प्रदेश में आज अधिकांश गांव प्राथमिक विद्यालयों से युक्त हैं, जिसमें 94.98 प्रतिशत विद्यालय पक्के भवन तथा शेष विद्यालय आंशिक पक्के एवं कच्चे भवन खुले आकाश के नीचे संचालित होते हैं। 2007 में प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर पर कुल 608638 अध्यापक थे जिसमें 35.27 प्रतिशत महिलाएं थी। आज अध्यापक छात्र अनुपात 1:61 का है।

कक्षा 1 में प्रवेश लेने वाली छात्राओं में से आज लगभग 58 प्रतिशत लड़कियां कक्षा 5 तक एवं लगभग 25 प्रतिशत लड़कियाँ कक्षा 8 तक पहुँच पाती है। इनमें से भी शहरों में 1 प्रवेश लेने वाली लड़कियों में से 62.24 प्रतिशत प्राथमिक स्तर एवं 51.82 प्रतिशत उच्च प्राथमिक स्तर तक पहुँचती हैं। जबकि गांवो में यह प्रतिशत क्रमशः 39. 56 एवं 17.71 है।

माध्यमिक स्तर

स्वतंत्रता के पश्चात् उत्तर-प्रदेश स्तर पर एंव राष्ट्रीय स्तर पर अनेक आयोग का गठन हुआ, जिसमें 1952 में गठित माध्यमिक शिक्षा पुनर्गठन समिति, जिसके अध्यक्ष आचार्य नरेन्द्र देव थे, प्रमुख थीं । इस समिति ने जांच के उपरांत माध्यमिक शिक्षा में अनेक दोष बताये और उनके निराकरण का उपाय भी बताया। इन्होंने पुस्तकीय ज्ञान को अपर्याप्त मानते हुए क्रियाशील रहकर ज्ञान प्राप्त करने का सुझाव दिया। विद्यार्थियों के उचित मार्गदर्शन हेतु प्रत्येक जिले में एक मनोवैज्ञानिक केन्द्र के निर्माण, हिंदी के साथ संस्कृति को अनिवार्य रूप से पढ़ाने एवं हाईस्कूल में गणित को अनिवार्य विषय के रूप में रखने का सुझाव दिया।

आचार्य नरेन्द्रदेव के सुझाव अति मूल्यवान थे और उनके क्रियान्वयन से शिक्षा की स्थिति में कुछ सुधार संभव हो सका। इसी अवधि में राष्ट्रीय सरकार ने माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन सितंबर, 1952 में डॉ. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में किया। आयोग ने बताया कि माध्यमिक शिक्षा संकीर्ण, एकांगी एवं जीवन से उसका कोई संबंध नहीं है। आयोग ने सुझाव दिया कि बहुद्देशीय माध्यमिक विद्यालय खोले जाय, ग्रामीण विद्यालयों में कृषि शिक्षा की विशेष व्यवस्था की जाय, पाठ्यक्रम में विविधता एवं लचीलापन हो और वे एक दूसरे से सहसंबंधित हो। बालिकाओं की शिक्षा हेतु सुझाव दिया कि बड़ी संख्या में बालिका खोले जाए और जहां संभव न हो, वहां सह शिक्षा की व्यवस्था की जाए। जिन्होंने माध्यमिक शिक्षा में सुधार हेतु अनेक सुझाव दिये। किंतु बालिकाओं की शिक्षा हेतु कोई उपयोगी सुझाव नहीं दिये। अत: स्त्री शिक्षा पर विचार हेतु दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गयी, जिन्होंने कहा कि माध्यमिक स्तर पर पृथक विद्यालय की स्थापना की जाए।

माध्यमिक स्तर पर लड़कियों का पाठयक्रम लड़कों के समान हो अथवा भिन्न इस पर विचार हेतु राष्ट्रीय स्त्री शिक्षा परिषद् की नियुक्ति 1962 में की गयी। इनके अनुसार माध्यमिक स्तर पर विविध विषय रखे जाए एवं बालिकाओं के लिए व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था की जाए। गृह विज्ञान, गणित एवं विज्ञान की शिक्षण को प्रोत्साहन दिया गया। इस प्रकार लड़कियों के लिए उनकी आवश्यकता और रूचि को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम बनने लगा। शिक्षा आयोग (1964-66) ने बालिका नामांकन को बढ़ाने पर जोर दिया और लक्ष्य रखा कि आगामी 20 वर्षों में लड़कियों और लड़कों का अनुपात 1:3 हो जाय। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) ने शिक्षा का उपयोग महिलाओं

की स्थिति में बुनियादी परिवर्तन लाने के साधन के रूप में किया। नई शिक्षा नीति ने माध्यमिक स्तर पर 10+2 संरचना को स्वीकारने, व्यापक रूप से व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था करने, नवोदय विद्यालयों की स्थापना के सुझाव दिये। नवोदय विद्यालयों में शिक्षा पूर्णत: नि:शुल्क होगी। विभिन्न आयोगों के सुझाव एवं सरकारी प्रयास के परिणामस्वरूप माध्यमिक स्तर पर हुई प्रगति तालिका से स्पष्ट है।

माध्यमिक स्तर पर शिक्षा

वर्ष	संस्थाओं की संख्या	नामांकन	
		बालिका	कुल
1948–49	774	20342	297547
1955–56	1474	87563	643929
1965–66	2775	322911	1745472
1975–76	4473	554909	2793389
1985–86	5999	562923	2695355
1996–97	7135	839244	3497496
2004–05	11477	1999059	5479098

स्रोत- भारत सरकार, शिक्षा की प्रगति, 1948–49, 1955–56, 1965–66, 175–76, 1985–86, 1996–97 * Selected Ed. Statistics 2007

* उत्तरांचल से अलग करके।

तालिका से स्पष्ट है कि 1948–49 के 2004–05 में संस्थाओं की संख्या में पन्द्रह गुने की वृद्धि हुई है। वहीं नामांकन में लगभग अठारह गुने की वृद्धि हुई। इस अवधि में माध्यमिक स्तर पर बालिका नामांकन में लगभग 98 गुने की आश्चर्यजनक वृद्धि हुई जो एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। 1948–49 में जहां चौदह लड़कों पर एक लड़की का नामांकन होता था, वहीं 2005 में 1.7 लड़कों पर एक लड़की होती है। कुल नामांकन में लगभग 40 प्रतिशत लड़कियाँ हैं। आज अध्यापक छात्र अनुपात 1:50 हो गया है जो प्रति अध्यापक छात्रों के दबाव को दर्शाती है।

उच्च शिक्षा

स्वतंत्रता प्रापित के समय उत्तर–प्रदेश में महिला उच्च शिक्षा की स्थिति अत्यंत दयनीय

थी। 1948-49 उत्तर-प्रदेश में उच्च शिक्षा से संबंधित 24 कालेज तथा 5 विश्वविद्यालय थे। इन शिक्षण संस्थाओं में कुल765 छात्राएं एम.ए. तथा एम.एस.सी. कक्षा में तथा दस छात्राएं शोधकार्य में लगी हुईं थीं । जबकि इस स्तर पर लड़कों की संख्या क्रमशः 9,090,3745 एवं 192 थी।

स्वतंत्रता के उपरांत 1948 में भारत सरकार ने देश की वर्तमान एवं भावी आवश्यकताओं के उपयुक्त उच्च शिक्षा हेतु सुझाव देने के लिए विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन किया गया। इसके अध्यक्ष डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन थे। आयोग ने स्त्री शिक्षा के महत्व को रेखांकित करते हुए कहा, ''यदि सामान्य शिक्षा स्त्री या पुरूष में से किसी एक तक सीमित होनी हो तो यह शिक्षा स्त्रियों को ही देनी चाहिए। तभी यह शिक्षाभावी पीढ़ी तक पहँचेगी।'' इस आयोग ने स्त्री शिक्षा के संबंध में महत्वपूर्ण सुझाव दिए। इसके अतिरिक्त उन्होंने उच्च शिक्षा से जुड़े अन्य पहलुओं पर महत्वपूर्ण सुझाव दिये। आयोग के सुझावों का यदि पूर्णरूप से पालन हुआ होता तो उच्च शिक्षा के क्षेत्र में काफी सुधार हुआ होता, परंतु ऐसा हुआ नहीं।

1958-59 में गठित दुर्गाबाई देशमुख समिति ने स्त्री शिक्षा के संबंध में सुझाव दिये। इनके अनुरूप स्त्री शिक्षा को प्रमुख राष्ट्रीय समस्या मान, इसे प्रमुखता देना, स्त्री शिक्षा के प्रसार हेतु आर्थिक अनुदान देना, 'राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद्' व राज्यों में 'बालिका तथा स्त्री शिक्षा की राज्य परिषदों की स्थापना' करना प्रमुख था। ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री शिक्षा के प्रसार हेतु विशेष प्रयत्न करना एवं केंद्र सरकार द्वारा व्यय वहन करना।

1964 में गठित शिक्षा आयोग ने महिलाओं को पुरूषों के समान शिक्षा के अवसर प्रदान करने एवं सह शिक्षा को प्रोत्साहित किया। आयोग ने उच्च शिक्षा में प्रवेश हेतु विद्यार्थी की योग्यता, स्थान एवं प्राध्यापकों की संख्या को आधार माना। यह प्रवेश प्रक्रिया प्रवेश परिषद द्वारा संचालित हो एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग प्रवेश की कसौटी निर्धारित करे। उन्नत अध्ययन केंद्रों की स्थापना की जाए, स्वाध्याय एवं अनुसंधान को प्रोत्साहन दिया जाए, आन्तरिक एवं अनवरत मूल्यांकन विधि को अपनाया जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968) ने संस्तुति की कि विश्वविद्यालय या महाविद्यालयों में छात्रों की प्रवेश संख्या, प्रयोगशालाओं, पुस्तकालयों एवं कर्मचारियों की संख्या के आधार पर निश्चित की जाए। प्रशिक्षण एवं अनुसंधान के मानकों में सुधार किया जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में उच्च शिक्षा का उद्देश्य छात्र के व्यक्तित्व के समग्र

विकास को ध्यान में रखते हुए राष्ट्र की सेवा में एक ऐसी उत्पादक ईकाई के रूप में तैयार करना है जो राष्ट्र की आवश्यकताओं और विशिष्टताओं के अनुरूप हो। उच्च शिक्षा में मुक्त विश्वविद्यालय तथा दूरस्थ शिखा प्रणाली को प्रश्रय दिया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1979)के अनुसार उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अनौपचारिक साधनों का प्रयोग किया जाए एवं व्यक्तिगत रूप से भी छात्रों की परीक्षाओं में सम्मिलित होने की अनुमति दी जाए। उच्च शिक्षा तीन वर्ष की हो। स्नातकोत्तर, प्रशिक्षण एवं शोधकार्य पाठ्यक्रम अंतर, अनुशासनीय पद्धति पर आधारित होना चाहिए।

इन सुझावों एवं सरकारी तथा निजी प्रयासों के परिणामस्वरूप उच्च शिक्षा के क्षेत्र में निम्नलिखित प्रगति दिखायी देती है।

उच्च शिक्षा

वर्ष	संस्थाओं की संख्या	नामांकन	
		बालिका	कुल
1948–49	24	1103	14130
1955–56	40	6576	74939
1965–66	128	9815	67340
1975–76	213	33300	141495
1985–86	389	84824	445667
1996–97	418	115796	475597
2004–05	1438	523948	1409470

स्रोत–भारत सरकार, शिक्षा की प्रगति, 148–59, 1955–56, 1965–66, 175–76, 1985–86, 1996–97।

सेलेक्टेड एजुकेशन स्टैटिस्टिक्स, 1970–71,1980–81,1990–912006–07

तालिका से स्पष्ट है कि इस दौरान महिला नामांकन में लगभग 200 गुने की वृद्धि हुई। इस समय कुल नामांकन का 31.8 प्रतिशत महिलाएँ हैं।

स्त्री शिक्षा की प्रगति का अध्ययन करने से स्पष्ट है कि उत्तर–प्रदेश में स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में अच्छी प्रगति हुई है। किंतु अन्य राज्यों के साथ तुलनात्मक अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि उत्तर–प्रदेश में स्त्री शिक्षा अत्यंत पिछड़ी हुई है। 14 वर्ष की आयु के

सभी बालक- बालिकाओं को अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा देने की बात कही। किंतु 2005-06 तक 6-11 आयु वर्ग के स्कूल जाने योग्य छात्रों में से मात्र 73.3 प्रतिशत बच्चे ही विद्यालय जा पा रहे हैं। स्कूल जाने योग्य बालिकाओं का मात्र 59 प्रतिशत ही स्कूली शिक्षा ग्रहण कर रही हैं। वहीं 11- 14 आयु वर्ग के स्कूल जाने योग्य कुल जनसंख्या का 49 प्रतिशत ही शिक्षा ग्रहण कर रही है, जिसमें 62.45 प्रतिशत लड़के तथा 31.64 प्रतिशत लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। इस स्तर पर एक बड़ी समस्या अपव्यय एवं अवरोधन की है। सातवें अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण के अनुसार कक्षा एक में प्रवेश लेने वाली लड़कियों में से मात्र 58 प्रतिशत लड़कियाँ कक्षा 5 तक तथा 25.24 प्रतिशत लड़कियाँ कक्षा 8 तक पहुँच पाती हैं।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में देखें तो आज राष्ट्रीय स्तर पर महिला नामांकन कुल नामांकन का 34 प्रतिशत हो गया है, किंतु उत्तर-प्रदेश में यह 31.8 प्रतिशत है। भारत के 16 राज्यों एवं केंद्र शासित प्रदेशों में उच्च शिक्षा में महिलाओं का प्रतिशत 33 से अधिक है।

साक्षरता दर के आधार पर यदि हम उत्तर-प्रदेश की अन्य राज्यों की तुलना करें तब भी उत्तर-प्रदेश में स्त्री पिछड़ी हुई अवस्था में है। राष्ट्रीय साक्षरता दर 52.07 प्रतिशत है, जिसमें 63.9 प्रतिशत पुरूष साक्षरता एवं 39.31 प्रतिशत महिला साक्षरता दर 26.02 है जो राष्ट्रीय दर से काफी कम है। यदि हम साक्षरता दर को अवरोही क्रम में रखें तो राज्यों एवं केंद्र शासित प्रदेशों में महिला साक्षरता के आधार पर उत्तर का स्थान 28वां है।

उन्नयन हेतु सुझाव

उत्तर-प्रदेश में स्त्री शिक्षा अत्यंत पिछड़ी हुई हे। वास्तव में स्त्री शिक्षा के मार्ग में अनेक बाधाएं हैं। मुख्यत: सामाजिक रूढ़िया, अशिक्षित माता-पिता, आर्थिक कठिनाईयाँ, बालिका विद्यालयों का अभाव, दोषपूर्ण पाठ्यक्रम एवं स्त्री के प्रति अनुचित दृष्टिकोण आदि कारक हैं।

स्त्री शिक्षा के मार्ग में आने वाली इन बाधाओं को दूर करने के लिए सरकार एवं जनता दोनों को सहयोग करना चाहिए। वैयक्ति, सामाजिक तथा राष्ट्रीय स्तर पर पूर्ण निष्ठा एवं ईमानदारी से अग्रांकित क्षेत्रों में प्रयासरत होने पर ही स्त्रियों की वर्तमान स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन हो सकता है।

- स्त्रियों की भूमिका व अधिकारों के प्रति समाज में व्याप्त मूल्यों, विचारों व

मनोवृत्तियों में परिवर्तन लाना होगा।

- महिलाओं के लिए शिक्षा के समान अवसर व सुविधाएं उपलब्ध कराना।
- महिलाओं के सामाजिक व आर्थिक विकास हेतु बालिकाओं को तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा दी जाए।
- विद्यालय घर के निकट हो, विद्यालय जाने के पूर्व बालिकाएं घर के कुछ कार्यों को सम्पन्न कर सकें।
- महिलाओं को समर्थ बनाने के लिए उनमें आत्मविश्वास, आत्मसम्मान, आत्म निर्भरता के विकास के लिए उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने के लिए, उनको व्यावसायिक रूप से कुशल बनाने के लिए आवश्यक है कि महिलाओं के पाठ्यक्रम में संशोधन हो।
- महिलाओं की आकांक्षा व लक्ष्य को गम्भीरता से लिया जाए व उनकी योग्यता एवं क्षमता का सही मूल्यांकन हो।
- गृह प्रबंध में स्त्री व पुरूष दोनों की सहभागिता हो।

महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, प्रशिक्षण, रक्षात्मक कानूनी उपाय, ग्रामीण विकास, संचार के साधन आदि कुछ ऐसे क्षेत्र हैं, जिनमें कार्य करना लाभदायक होगा। उनके हितों की रक्षा के लिए दीर्घकालिक नीतिगत उपायों की आवश्यकता है। केवल सरकारी उपाय ही महिलाओं को समानता नहीं प्रदान कर सकते, उसमें समाज को भी अपनी भूमिका निभानी होगी। खास तौर पर महिलाओं को स्वयं आगे आना होगा और योग्यता एवं क्षमता के द्वारा राष्ट्र निर्माण में सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करना होगा।

सन्दर्भ

अग्रवाल एस.पी. एवं अग्रवाल जे.पी. (1992): *भारत में महिला शिक्षा,* कन्सैप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली-59

अल्तेकर, ए.एस. (1957) : एजुकेशन इन एन्सीएन्ट इंडिया : इंडिया बुक शॉप, बनारस

चर्तुवेदी, एस.एन. (1930) : द हिस्ट्री ऑफ रूरल एजुकेशन इन द यूनाइटेड प्रोविन्स ऑफ आगरा एंड उध (1890-1926) इलाहाबाद

मिश्रा, लक्ष्मी (1966) : एजुकेशन आफ वूमन इन इंडिया, मैकमिलन एंड कंपनी लि., मुंबई

नायक, जे.पी. एंड नरूला, एस. (1974) : ए हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन इंडिया; द मैकमिलन एंड कंपनी, नई दिल्ली

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 3, दिसम्बर 2008

दूरस्थ शिक्षा के संदर्भ में हिंदी की स्व-अनुदेशनात्मक मुद्रित सामग्री का विकास

रेणु ठाकुर*

सारांश

उच्च शिक्षा के महत्व को देखते हुए स्वतंत्रता के बाद से ही भारत में अनेक विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई परंतु विभिन्न कारणों से औपचारिक विश्वविद्यालयी शिक्षा तक सभी विद्यार्थियों की पहुँच संभव न होने के कारण दूरस्थ शिक्षा की संकल्पना को जन्म मिला। दूरस्थ शिक्ष व्यवस्था के अंतर्गत विभिन्न माध्यमों (स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री, दत्त-कार्य व्यवस्था, विद्यार्थियों की सहायतार्थ सेवाएं, अध्ययन केंद्र और मूल्यांकन) द्वारा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को सुनिश्चित किया जाता है। इन सभी माध्यमों में मुद्रित स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री का विशेष महत्व है। शिक्षाविद्ों द्वारा मुद्रित स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री के निर्माण एवं विकास संबंधी अनेक मॉडल प्रस्तुत किए गए हैं परंतु अभी भी अधिकांश मुक्त विश्वविद्यालयों और दूरस्थ शिक्षा संस्थानों में मुद्रित स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री के निर्माण में परंपरागत शैली को ही अपनाया जा रहा है जिससे दूरस्थ शिक्षा की संकल्पना पर ही प्रश्न चिह्न लग जाता है। विश्वविद्यालयी स्तर पर मुद्रित स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री के निर्माण में अभिक्रमित अनुदेशन के सिद्धांतों का अनुपालन कर हिंदी की मुद्रित स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री के विकास एवं विकसित सामग्री पर विषय विशेषज्ञों की राय जानने की दृष्टि से यह शोध पत्र प्रस्तुत किया जा रहा है।

दूरस्थ शिक्षा की संकल्पना

औपचारिक विश्वविद्यालयी शिक्षा से जुड़े विद्यार्थियों के अतिरिक्त, विद्यार्थियों का एक

* प्रवक्ता, लिंग्यास ललिता देवी इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट एंड साइंसिस, गुरु गोविंद सिंह इंद्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, दिल्ली

बड़ा समूह ऐसा है जो विविध कारणों से अपनी उच्च शिक्षा दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था द्वारा ग्रहण कर रहा है। दूरस्थ शिक्षा को कई शिक्षाविद्ों ने परिभाषित करने का प्रयास किया है। इस दिशा में कीगन (Keegan)का कार्य महत्वपूर्ण है जिन्होंने अनेक परिभाषाओं का संश्लेषण कर दूरस्थ शिक्षा की विशेषताओं को प्रस्तुत किया है। **'कीगन'** के अनुसार दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था में:-

1. संपूर्ण अधिगम प्रक्रिया के दौरान शिक्षक और विद्यार्थियों के मध्य लगभग स्थाई अलगाव रहता है, यह विशेषता इसे पारंपरिक शिक्षा व्यवस्था से अलग करती है,जहाँ शिक्षक और विद्यार्थी आमने सामने रहते हैं।
2. इसमें अधिगम सामग्री की योजना, तैयारी और अन्य विद्यार्थी सहायता कार्यक्रमों के लिए एक शैक्षिक संगठन का प्रभाव रहता है, जोकि इस व्यवस्था को 'निजी अध्ययन' से अलग करता है।
3. शिक्षक और विद्यार्थियों को जोड़ने के लिए एवं कोर्स की विषयवस्तु उपलब्ध कराने के लिए तकनीकी मीडिया (प्रिंट, ऑडियो, विडियो और कंप्यूटर) का अधिकाधिक प्रयोग।
4. दोतरफा संप्रेषण की व्यवस्था ताकि विद्यार्थी न केवल शिक्षकों के निर्देशन का लाभ उठा सकें बल्कि स्वयं भी संवाद की शुरूआत कर सकें। इस प्रकार, यह व्यवस्था शिक्षा में तकनीकी के एक नए प्रयोग को प्रस्तुत करती है।
5. संपूर्ण अधिगम अवधि में विद्यार्थी समूह के मध्य भी लगभग स्थाई अलगाव रहता है ताकि विद्यार्थी अपनी आवश्यकता और सुविधानुसार व्यक्तिगत रूप से अध्ययन कर सकें। आवसरिक बैठकों का आयोजन शिक्षा- शास्त्रीय एवं समाजीकरण उद्देश्यों के लिए किया जाता है।

उपर्युक्त विशेषताएँ यह स्पष्ट करती हैं कि 'दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था' एक व्यापक संकल्पना है, जो शिक्षा के दोनों पक्षों-शिक्षण और अधिगम को पर्याप्त स्थान देती है।

दूरस्थ शिक्षा और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया

दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को निम्नलिखित प्रकार से संचालित किया जाता है:-

1. स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री की व्यवस्था।
2. दत्त-कार्य व्यवस्था।
3. विद्यार्थियों की सहायतार्थ सेवाएं और अध्ययन केंद्र।
4. मूल्यांकन व्यवस्था।

दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था को सूचारू रूप से क्रियान्वयन का सारा दारोमदार इन्हीं पहलुओं पर टिका है। अत: इन सभी पहलुओं से संबंधित नवाचारों पर शिक्षा विशेषज्ञों की क्रियाएँ प्रतिक्रियाएँ चलती रहती हैं, विशेष रूप से स्व-अनुदेशनात्मक मुद्रित सामग्री पर, क्योंकि अधिकांश मुक्त विश्वविद्यालय एवं दूरस्थ शिक्षा संस्थान स्व-अनुदेशनात्मक मुद्रित सामग्री को ही शिक्षण का मुख्य आधार बनाते हैं। यह एक ऐसा माध्यम है जो कि विद्यार्थियों और शिक्षकों के मध्य अप्रत्यक्ष रूप से अनुरूपित द्विपक्षीय संप्रेषण स्थापित करता है। अत:इसकी योजना, निर्माण और विकास के समय विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए। इस मुद्रित सामग्री की भाषा अनौपचारिक, संप्रेषणात्मक और जीवंत होनी चाहिए ताकि यह विद्यार्थियों को तटस्थता की भावना से दूर करते हुए अधिगम के लिए प्रेरित कर सके परंतु दूरस्थ शिक्षा के क्षेत्र में हुए अध्ययन इस सामग्री से संबंधित अनेक सीमाओं को हमारे सामने रखते हैं।

प्रचलित स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री का स्वरूप

शोध कार्यों की दृष्टि से दूरस्थ शिक्षा का क्षेत्र ज्यादा समृद्ध नहीं रहा है।[1] क्योंकि भारत में दूरस्थ शिक्षा की संकल्पना इतनी पुरानी नहीं है जितनी कि विदेशों में। यद्यपि भारत में इसकी शुरूआत 1962 से, पत्राचार विद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय) के प्रारंभ के साथ मानी जा सकती है परंतु सही मायनों में दूरस्थ शिक्षा की संकल्पना इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नू) 1985 के साथ सामने आई,जो दूरस्थ शिक्षा के दोनों पक्षों (दूरस्थ शिक्षण और दूरस्थ अधिगम) को ध्यान में रखकर अस्तित्व में आई। 1982 से लेकर वर्तमान तक मुक्त विश्वविद्यालयों और दूरस्था शिक्षा निदेशालयों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई है। मुक्त विश्वविद्यालयों और दूरस्थ शिक्षा संस्थानों से जुड़े जो शोध कार्य सामने आते रहे हैं इनमें से अधिकांश लघु स्तरीय हैं फिर भी कुछ शोध कार्य ऐसे हैं जो वृहद् स्तरीय हैं और जिनके निष्कर्षों को आगामी शोध कार्यों का आधार बनाया जा सकता है। इन शोध कार्यों के अध्ययन के पश्चात् स्व-अनुदेशनात्मक

मुद्रित सामग्री से संबंधित निम्नलिखित बातें उभर कर आई है:-

1. यह सामग्री पाठ्य पुस्तक के रूप में होती है।
2. इसमें दिए गए संदर्भ उपलब्ध नहीं हो पाते हैं।
3. परीक्षा की दृष्टि से यह सामग्री अपर्याप्त है।
4. जटिल प्रस्तुतीकरण इसे समझने में मुश्किल बना देता है।
5. ये पाठ संप्रेषणात्मक नहीं हैं जिसके कारण पाठ्यक्रम में रूचि बनाए रखना कठिन हो जाता है।

इनायत खान (1992), एच.सी.एस.राठौर (1993), जी.राम.रेड्डी (1998),पी.के. साहू (1993)के अध्ययन स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री का उपर्युक्त रूप प्रस्तुत करते हैं।

स्कूल ऑफ ओपन लर्निंग (दिल्ली विश्वविद्यालय) में बी.कॉम (पास) प्रथम वर्ष के लिए निर्धारित हिंदी की स्व- अनुदेशनात्मक सामग्री का विवरण

यह ध्यान देने योग्य है कि स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री को पाठ्य पुस्तकों का विकल्प नहीं माना जाना चाहिए क्योंकि पाठ्य पुस्तकों का कार्य शिक्षण नहीं है जबकि स्व-अनुदेशनात्मक मुद्रित सामग्री से विषय विशेष के शिक्षण की अपेक्षा रखी जाती है। अत: पाठ्य पुस्तकीय रूप दूरस्थ शिक्षण की संकल्पना से ही बाहर है। स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री ऐसी हो जो विद्यार्थियों को शिक्षक की मौजूदगी का एहसास दिलाए। स्कूल ऑफ ओपन लर्निंग (दिल्ली विश्वविद्यालय)में उपलब्ध कराई जाने वाली स्व-अनुदेशनात्मक मुद्रित सामग्री पाठ्य पुस्तकीय रूप में ही है। पाठ्यक्रमानुसार विषयसामग्री को निबंधात्मक रूप में पाठों में सजाया गया है। पाठों के पीछे स्व मूल्यांकन हेतु न तो प्रश्न दिए गए हैं और न ही जांच हेतु उत्तर। यद्यपि अंत में, विद्यार्थियों के लिए प्रश्न रखे गए हैं तथापि यह व्यवस्था निरंतर मूल्यांकन की दृष्टि से उचित प्रतीत नहीं होती क्योंकि सभी पाठों के प्रश्न एक साथ पूछ लिए जाने से विद्यार्थी अपनी प्रतिक्रियाओं को व्यवस्थित नहीं कर पाते।

एक अन्य महत्वपूर्ण बात जिस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि स्व-अनुदेशनात्मक मुद्रित सामग्री में प्रश्न ही तो हैं जो विद्यार्थियों के साथ संप्रेषण स्थापित करते हैं और जिनके होने से शिक्षक की उपस्थिति का अहसास होता है। अत: प्रश्न विद्यार्थियों में

निरंतर उत्प्रेसणा स्तर को बनाए रखने में सहायता करते हैं और उन्हें विषय सामग्री को ध्यान से पढ़ने के लिए, उस पर चिंतन मनन, विश्लेषण करने के लिए मजबूर करते हैं और इस प्रकार से प्रस्तुत सामग्री उनके मानस पठल पर अधिक समय तक और अधिक स्थाई तौर पर रहती है। प्रश्नों का प्रयोग विषय सामग्री को नीरस होने से भी बचाता है और साथ ही विद्यार्थियों का अपने विचार स्थिरीकरण का पर्याप्त समय भी मिलता जाता है।

शोध कार्यों के अध्ययन के परिणामस्वरूप एक और सीमा जो उभर कर आई है वह है- स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री का परीक्षा की दृष्टि से अपर्याप्त होना। विद्यार्थियों की इस प्रतिक्रिया को दो प्रकार से लिया जा सकता है:-

1. छात्र -छात्राएं स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री के अंतर्गत विषयवस्तु की कवरेज से संतुष्ट नहीं है, या
2. स्व-अनुदेशनात्मक मुद्रित सामग्री में प्रस्तुत विषय सामग्री संकल्पनाओं के निर्माण में इतनी करगर नहीं कि वे परीक्षा की दृष्टि से उपयुक्त कहलाई जाए।

दोनों ही बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री विषयवस्तु के दोनों ही पक्षों (गुणात्मक और परिमाणात्मक) को ध्यान में रखकर तैयार की जानी चाहिए क्योंकि दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत आने वाला विद्यार्थी समूह (अंशकालिक और पूर्णकालिक) विभिन्न कारणों के चलते इस सामग्री से इतर अन्य संदर्भों का अध्ययन नहीं कर पाता। अत: स्व-अनुदेशनात्मक मुद्रित सामग्री का स्वयं में पूर्ण होना अति आवश्यक है और साथ ही यह सामग्री ऐसी हो कि विद्यार्थियों की सभी समस्याओं का समाधान इसमें मिल सकें।

वास्तव में स्व-अनुदेशनात्मक मुद्रित सामग्री का स्वरूप कक्षा के लिए तैयार व्याख्यान अथवा पाठ्य पुस्तकीय स्वरूप से बिल्कुल अलग है। अत: इसके लेखन एवं विकास के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। स्कूल ऑफ ओपन लर्निंग(दिल्ली विश्वविद्यालय) में यह सामग्री व्यक्तिगत रूप से शिक्षकों द्वारा तैयार की जाती है जबकि यह सामान्य अवधारणा है कि सामूहिक कार्य बेहतर परिणाम उत्पन्न करते हैं। इस संदर्भ में 'कोर्स टीम'उपागम का वर्णन करना उचित होगा जिसके अंतर्गत विषय विशेषज्ञों के साथ-साथ विभिन्न शैक्षिक प्रौद्योगिक सामूहिक रूप से

सामग्री का विकास करते हैं। इस प्रकार एक उत्तम सामग्री हमारे सामने आती है परंतु इस उपागम के कुछ नकारात्मक पक्ष भी हैं जैसे- इसका अधिक खर्चीला होना तथा दूसरा, और अधिक महत्वपूर्ण यह है कि इस उपागम में शिक्षक व्यक्तिगत रूप से अपने विद्यार्थियों से संपर्क नहीं बना पाता क्योंकि यहाँ व्यक्तिगत उपलब्धि के लिए कोई स्थान नहीं जोकि शिक्षक की स्वतंत्रता का हनन करती है और उसकी विशेषज्ञता को सामने नहीं आने देती जबकि व्यक्तिगत रूप से लिखे गए पाठों में पाठ के लेखक का नाम अलग से दिया जाता है, जिसके माध्यम से शिक्षक और विद्यार्थियों में एक संपर्क स्थापित हो जाता है।

एक अन्य उपागम जिसे 'कोर्स सामग्री विकास' उपागम कहते हैं, के अंतर्गत सामग्री व्यक्तिगत रूप से शिक्षकों द्वारा ही लिखी जाती है और यदि वे चाहते हैं तो वे 'दूरस्थ शिक्षा विकास केंद्र' से सहायता ले सकते हैं। यह उपागम दोनों ही पक्षों को ध्यान में रखता है। भारत में इस प्रकार के दूरस्थ शिक्षा विकास केंद्र की व्यवस्था 'इग्नू' द्वारा की गई है। वास्तव में उपागम का चुनाव दूरस्थ विश्वविद्यालयों और संस्थानों की आर्थिक स्थिति पर भी निर्भर करता है।

स्व-अनुदेशनात्मक मुद्रित सामग्री से संबंधित सीमाओं को जान लेने के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि इन सीमाओं पर काम किया जाए। डी.एन. सनसनवाल (1987) ने दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत प्रयोग की जाने वाली स्व-अनुदेशनात्मक मुद्रित सामग्री के निर्माण हेतु विभिन्न प्रारूपों को महत्वपूर्ण माना है। इनमें से प्रमुख हैं- एडवांस ऑरगेनाइजर विधि (Advance Oranizer), अभिक्रमित अनदेशन, मॉडयूल और प्रश्न विधि। उनके अनुसार ये विभिन्न प्रारूप स्व-अनुदेशनात्मक मुद्रित सामग्री के निर्माण हेतु पर्याप्त संतोषप्रद हैं और इनकी प्रभावशीलता की जांच की जानी आवश्यक है।

अभिक्रमित अनुदेशनः स्व-अनुदेशनात्मक मुद्रित सामग्री के लिए एक वैकल्पिक विधि

अभिक्रमित अनुदेशन शैक्षिक मनोविज्ञान की देन है। यह अनुदेशनात्मक सामग्री को व्यवस्थित करने की एवं उसका शिक्षण करने की विधि हैं इस विधि को एक महत्वपूर्ण शैक्षिक विधि के रूप में प्रस्तुत करने से पूर्व मनोवैज्ञानिक स्किनर ने इसके आधारभूत

सिद्धांतों की प्रयोगशाला में भली-भाँति जाँच की। अपने प्रयोगों के आधार पर उन्होंने यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि यदि शिक्षार्थी को उसके प्रयासों के परिणामों की जानकारी तुरंत दी जाती है तो उसे कार्य करते रहने की अभिप्रेरणा मिलती है और वह गतिपूर्वक अधिगम प्रक्रिया से जुड़ने लगता है। अभिक्रमित अनुदेशन के अंतर्गत विषयवस्तु को क्रमबद्ध एवं तार्किक क्रम में, छोटे-छोटे पदों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और तत्पश्चात् शिक्षार्थी को संक्षिप्त प्रश्नों के माध्यम से यह अवसर दिया जाता है कि वह निर्णय करे कि उसे अग्रिम पदों का अध्ययन करना चाहिए अथवा नहीं। इस प्रकार इस विधि में व्यक्तिगत भिन्नताओं का सम्मान करने का प्रयास किया जाता है।

अभिक्रमित अनुदेशन की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं:-

1. अनुदेशनात्मक सामग्री को तार्किक एवं क्रमबद्ध तरीके से प्रस्तुत करना।
2. व्यक्तिगत भिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए विद्यार्थियों को अपनी गति से अध्ययन करने का अवसर प्रदान करना।
3. यह विद्यार्थियों की प्रतिक्रियाओं पर आधारित है।
4. यह विभिन्न रूपों (फ्लैश कार्ड, पाठ्य पुस्तक, स्लाइड, ट्रांसपेरेन्सी) में उपलब्ध होती है।
5. यह प्रतिपुष्टि प्रदान करती है।
6. इसे शिक्षक की अनुपस्थिति में, विद्यार्थी द्वारा व्यक्तिगत रूप से भी प्रयोग में लाया जा सकता है।
7. यह निदानात्मक एवं उपचारात्मक शिक्षण में सहायक है।
8. यह विद्यार्थी के व्यवहारगन परिवर्तनों को मापनीय रूप में प्रस्तुत करती है।

स्किनर द्वारा प्रतिपादित रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन (1954) एवं एन.ए.क्राउडर द्वारा प्रतिपादित शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन (1960) का आधार टाइप-आर अनुबंधन है। टाइप-आर अनुबंधन को क्रियाप्रसूत अनुबंधन या साधनात्मक अनुबंधन भी कहा जाता है,क्योंकि इसमें अनुक्रिया की भूमिका महत्वपूर्ण होती है और इसी अनुक्रिया के परिणाम (पुनर्बलन) के आधार पर उस अनुक्रिया का अनुबंधन निर्भर करता है। अभिक्रमित अनुदेशन निम्नलिखित सिद्धांतों पर कार्य करता है:-

1. संक्षिप्त पदों का सिद्धांत: अभिक्रमित अनुदेशन के अंतर्गत विषयवस्तु को पर्याप्त छोटे-छोटे पदों में विभक्त कर तार्किक क्रम से व्यवस्थित किया जाता है।
2. सक्रिय अनुक्रिया का सिद्धांत: इसके अंतर्गत विद्यार्थियों द्वारा अत्याधिक सक्रिय व्यवहार की अपेक्षा की जाती है। उसकी सही सक्रियता उसके क्रमिक अधिगम को निर्धारित करती है।
3. तुरंत पुष्टि का सिद्धांत: विद्यार्थियों को उनके द्वारा दिए गए उत्तरों की तुरंत पुष्टि करा दी जाती है, जो कि अधिगम अर्जित करने में अभिप्रेरक का काम करती है।
4. स्व गति का सिद्धांत: अभिक्रमित अनुदेशन विद्यार्थियों को स्व गति से सीखने तथा आगे बढ़ने का पर्याप्त अवसर प्रदान करता है।
5. स्व परीक्षण का सिद्धांत: विद्यार्थी अपने द्वारा दिए गए उत्तरों की जांच दिए गए उत्तरों के साथ कर यह परीक्षण स्वयं कर सकते हैं कि वे कहां तक सीख पाए हैं।

भारत में अभिक्रमित अनुदेशन का समावेश

भारत में अभिक्रमित अनुदेशन 1963 में, इलाहाबाद में 'सेन्ट्रल पैडागोजिकल इंस्टिट्यूट' की विचार गोष्ठी एवं 1965 और 1966 में 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद' की ऐसी ही विचार गोष्ठियों के माध्यम से प्रकाश में आया। 1965 में अभिक्रमित अनुदेशन के भारतीय संघ की स्थापना हुई जिसमें 'शैक्षिक प्रौद्योगिकी' पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया।

भारतीय परिवंश में अभिक्रमित अनुदेशन की अपयोगिता को प्रकट करते हुए डॉ. एस.एस. कुलकर्णी कहते हैं:-''Teaching Machine or Programmed Instruction material is not a "machine" which could be bought from America.It is essentially approach to individualise education in a society that is committed to mass education .....Indian educationalists may study their structure, and should develop programmes suitable to the local needs."

दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत अभिक्रमित अनुदेशन

औपचारिक शिक्षण व्यवस्था के अंतर्गत जहां शिक्षक और विद्यार्थियों के मध्य प्रत्यक्ष संप्रेषण होता है, वहां शिक्षक द्वारा अभिक्रमित अनुदेशन का प्रयोग करते हुए कक्षा में

विद्यमान व्यक्तिगत भिन्नताओं का संपूर्ण आदर किया जा सकता है। बुच सर्वे के अनुसार औपचारिक शिक्षण अधिगम व्यवस्था में यह विधि विभिन्न कक्षा स्तरों पर लगभग सभी विषयों (विज्ञान, गणित, अंग्रेजी, भूगोल, भौतिक शास्त्र, गृह विज्ञान) के सफलतम शिक्षण में सहायक हुई है। अत: दूरस्थ शिक्षा के क्षेत्र में जहाँ व्यक्तिगत भिन्नताओं का विस्तार कहीं अधिक है, वहां शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में अभिक्रमित अनुदेशन का स्वागत किया जाना चाहिए।

दूरस्थ शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में प्रत्यक्ष संप्रेषण के अवसर बहुत कम आते हैं। व्यक्तिगत संपर्क कार्यक्रम (पी.सी.पी.) एवं ट्यूटोरियल जैसे कार्यक्रमों में विद्यार्थियों की कम उपस्थिति के कारण स्त्रोत व्यक्ति द्वारा अभिक्रमित अनुदेशन विधि का प्रयोग और लाभ सभी विद्यार्थियों तक नहीं पहुँच पाता और इन कार्यक्रमों के लिए समयावधि प्राय: इतनी कम होती है कि स्त्रोत व्यक्ति द्वारा विद्यार्थियों के विभिन्न प्रश्नों का उत्तर देने के लिए व्याख्यान विधि को ही प्राथमिकता दी जाती है। उनके पास इतना समय ही नहीं होता कि वे अभिक्रमित सामग्री को वितरित कर सकें और उसके माध्यम से प्रत्यक्ष शिक्षण करा सकें। व्यक्तिगत संपर्क कार्यक्रम के अतिरिक्त दूरस्थ विद्यार्थियों के लिए स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री की व्यवस्था की जाती है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जो सभी विद्यार्थियों के हाथों में पहुंचती है। अत: इसके प्रयोग की संभावना अधिकाधिक होती है। यह स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री केवल मुद्रित रूप में ही नहीं बल्कि ऑडियो विडियो कैसेट और सी.डी. के रूप में भी उपलब्ध होती है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि इसी स्व अनुदेशनात्मक सामग्री को इस प्रकार से तैयार किया जाए कि अधिकाधिक अधिगम संभव हो सके। व्यक्तिगत संपर्क कार्यक्रम आदि में अभिक्रमित अनुदेशन का प्रयोग न किए जाने की असमर्थता को इस माध्यम द्वारा पूरा किया जा सकता है। अभिक्रमित अनुदेशन जिन सिद्धांतो पर टिका है वे दूरस्थ विद्यार्थियों में रूचि और उत्प्रेरणा उत्पन्न करने के लिए आवश्यक लगते हैं क्योंकि यहां विद्यार्थी मूलत: स्वाध्ययन पर निर्भर रहता है, उसके लिए यह जानकारी अति आवश्यक है कि उसके अध्ययन की दिशा ठीक है अथवा नहीं। इसलिए व्यक्तिगत मतानुसार यह लगता है कि यदि दूरस्थ शिक्षण प्रक्रिया पर ध्यान दिया जाए तो अपनी सीमाओं के रहते हुए भी अभिक्रमित अनुदेशन दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था मेंएक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है।

अभिक्रमित अनुदेशन की प्राय: निम्नलिखित बिंदुओं पर आलोचना होती रही है:-

1. इसमें विषयवस्तु से संबंधित सूचनाओं को विविधता से प्रस्तुत करने की संभावनाएं कम होती हैं।
2. इसमें विभिन्न पदों में विद्यार्थियों द्वारा की गई त्रुटियों का सीधे ही निवारण कर दिया जाता है।
3. इसमें विद्यार्थियों को पूर्वनिर्धारित क्रम में सीखने का आग्रह रहता है, जो इसे कृत्रिम बना देता है।
4. इसमें नीरसता व यांत्रिकता का समावेश रहता है।
5. यह अधिक खर्चीला और सयम लेने वाला माध्यम है क्योंकि इसके पदों को पुस्तकाकार एवं अन्य सॉफ्टवेयर का रूप देने में अधिक धन व समय खर्च होता है।

यह सर्वविदित है कि कोई भी शिक्षण विधि दोष मुक्त नहीं है और अभिक्रमित अनुदेशन भी इसका अपवाद नहीं है। अभिक्रमित अनुदेशन के प्रयोग संबंधी यदि पहली सीमा पर विचार किया जाए कि यहाँ सूचनाओं कोक विस्तृत और विविध रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता तो हम पाएंगे कि दूरस्थ व्यवस्था में आने वाले विद्यार्थी वे विद्यार्थी हैं जो अधिकांशत: अंशकालिक हैं, जो काम करते-करते अपनी पढ़ाई को जारी रखना चाहते हैं ताकि उनके लिए अपने व्यवसाय विशेष में तरक्की के अवसर बनते जाएं अथवा जो अपने व्यवसाय से संबंधित अपने ज्ञान को तरोताजा बनाए रखना चाहते हैं एवं क्षेत्र विशेष में होने वाले नवाचार से परिचित होना चाहते हैं। इस विद्यार्थी समूह की प्राथमिकता यही रहती है कि उपलब्ध कम समय में वे अपने क्षेत्र के महत्वपूर्ण ज्ञानांश का अध्ययन कर सकें। अत:इस समूह का पूरा ध्यान विषयसामग्री से संबंधित विस्तृत जानकारियों के स्थान पर महत्वपूर्ण और अति आवश्यक जानकारियों पर रहता है।

दूरस्थ विद्यार्थियों का एक समूह ऐसा भी होता है, जो पूर्णकालिक होते हैं। इस श्रेणी में वे विद्यार्थी आते हैं, जो औपचारिक शिक्षा व्यवस्था का अंग इसलिए नहीं बन पाते क्योंकि इनके प्राप्तांक प्रवेश हेतु निर्धारित प्राप्तांक प्रवेश हेतु निर्धारित प्राप्तांकों से कम होते हैं। अत: उच्च शिक्षा में स्वयं को बनाए रखने के लिए वे दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था का अंग बनते हैं। ऐसे विद्यार्थियों के लिए यदि विषयसामग्री को छोटे-छोटे पदों में

बांटकर तार्किक क्रम से सजाए जाए तो उनके लिए विषय को समझना आसान होगा। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे विषय होते हैं जो विद्यार्थियों के एि बिल्कुल नए होते हैं। ऐसे में उनका पूर्व निर्धारित प्रस्तुतीकरण विषय को सरल और सुगम बना देता है। विषयसामग्री का यह पूर्वनिर्धारित क्रम ऐसे विद्यार्थी समूह के लिए (जैसे- गृहणियाँ) विशेष रूप से लाभकारी होता है, जो काफी लंबे अंतराल के बाद अध्ययन शुरू करते हैं। ऐसे में विद्यार्थियों द्वारा सीखे गए ज्ञान की तुरंत जानकारी देने से (सही अथवा गलत) उनमें अध्ययन के प्रति रूचि व उत्प्रेरणा बनी रहती है और वे स्वयं को शिक्षकों एवं समसमूह से अलग थलग महसूस नहीं करते।

जहां तक अभिक्रमित सामग्री के निर्माण में लगने वाले धन और समय का प्रश्न है तो हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यह पक्ष दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था की गुणवत्ता से जुड़ा पक्ष है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यात्व्य है कि दूरस्थ विद्यार्थी कई कारणों से अध्ययन के दूसरे माध्यमों जैसे लाइब्रेरी का प्रयोग नही कर पाते, अत: इसी स्व अनुदेशनात्मक सामग्री को इतना सक्षम होना होगा कि वे विद्यार्थियों की सभी आवश्यकताओं (शिक्षक, लाइब्रेरी, समसमूह) की पूर्ति कर सकें। इसलिए इसके निर्माण में लगने वाले समय और धन का प्रयोग इस प्रकार से सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि विद्यार्थियों के हितों की हानि न हो।

वास्तव में अभिक्रमित अनुदेशन की आलोचना का मुख्य आधार यह है कि इसका उद्‌गम व्यवहारवादी उपागम से हुआ जो अधिगमकर्त्ता को एक 'खाली स्लेट' के रूप में देखता है और उसकी मानसिक शक्तियों की अवहेलना करता है। इन सीमाओं के बीच यह बिंदु विचारणीय है कि विषयसामग्री का एक तार्किक व्यवस्थित क्रम और परिणामों की तुरंत जानकारी अधिगमकर्त्ता को, विशेषत: दूरस्थ अधिगमकर्त्ता को अधिगम के लिए प्रेरित करता है। अत: इसी बिंदु को केंद्र में रखते हुए और संबंधित सीमाओं से पीछे हटते हुए दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत अभिक्रमित अनुदेशन के सिद्धांतों पर आधारित स्व अनुदेशनात्मक मुद्रित सामग्री को सकारात्मक रूप में देखा जा सकता है।

भाषा और अभिक्रमित अनुदेशन

सामान्य अर्थों में भाषा एक ऐसा माध्यम है जो विचारों की अभिव्यक्ति और उनके अर्थग्रहण में सहायता करता है परंतु यदि इसकी प्रकृति और प्रयोजनों का ध्यान में

रखकर इसे परिभाषित करना हो तो हम कह सकते हैं कि 'भाषा वागेन्द्रियों द्वारा नि:सृत उन ध्वनि प्रतीकों की संरचनात्मक व्यवस्था है जो अपनी मूल प्रकृति में यादृच्छिक एवं रूढ़िपरक होते हैं और जिसके द्वारा किसी भाषा समुदाय के व्यक्ति अपने अनुभवों को व्यक्त करते हैं, अपने विचारों को संप्रेषित करते हैं और अपनी सामाजिक अस्मिता, पद तथा अंतर्वैयक्तिक संबंधों को सूचित करते हैं।'

इस परिभाषा का विश्लेषण करें तो भाषा की प्रकृति और प्रयोजन के विषय में निम्नलिखित बातों पर ध्यान जाता है:-

1. भाषा प्रतीकों के रूप में।
2. भाषिक प्रतीक अपनी मूल प्रकृति में ध्वनिपरक हैं।
3. वागेन्द्रियों द्वारा नि:सृत ध्वनियाँ ही भाषिक प्रतीक हैं।
4. भाषिक प्रतीक अपनी मूल प्रकृति में सामान्य (यादृच्छिक और रूढ़िपरक) है
5. भाषा प्रतीकों की व्यवस्था है।
6. भाषिक प्रतीकों की व्यवस्था अपनी प्रकृति में संरचनात्मक होती है।
7. भाषा अभिव्यक्ति, संप्रेषण और सूचक प्रयोजन के लिए।

भाष प्रतीकों के रूप में

प्रतीक वह वस्तु है जो किन्हीं विशेष संदर्भों में अन्य वस्तु के स्थान पर प्रयुक्त होती है। उदाहरण के लिए- शिवलिंग प्रतीक है भगवान शिव का। इसी प्रकार यदि 'घोड़ा' शब्द पर विचार करें तो पाएंगे कि 'घोड़ा'शब्द (लिखित या उच्चरित) स्वयं घोड़ा नहीं होता बल्कि 'घोड़ा' वस्तु के लिए प्रयुक्त एक प्रतीकजन्य भाषिक वस्तु है।

प्रतीक की अवधारणा के स्पष्टीकरण के लिए तीन इकाइयों- 'संकेतित वस्तु', 'संकेतार्थ' और'संकेत प्रतीक' पर विचार करना आवश्यक है। 'संकेतित वस्तु' बाह्य जगत में विद्यमान इकाई है जैसे-घोड़ा, पेड़ आदि। 'संकेतार्थ' प्रयोगकर्त्ता के मन में स्थित उस इकाई की संकल्पना है और 'प्रतीक' इस संकेतार्थ को अभिव्यक्ति देने वाली इकाई है।

प्रस्तुत चित्र संकेतित वस्तु-संकेतार्थ और संकेतार्थ-प्रतीक के मध्य सीधे संबंध को दर्शाता है एवं संकेतित वस्तु -प्रतीक के मध्य खंडित रेखा सीधे संबंध को नहीं

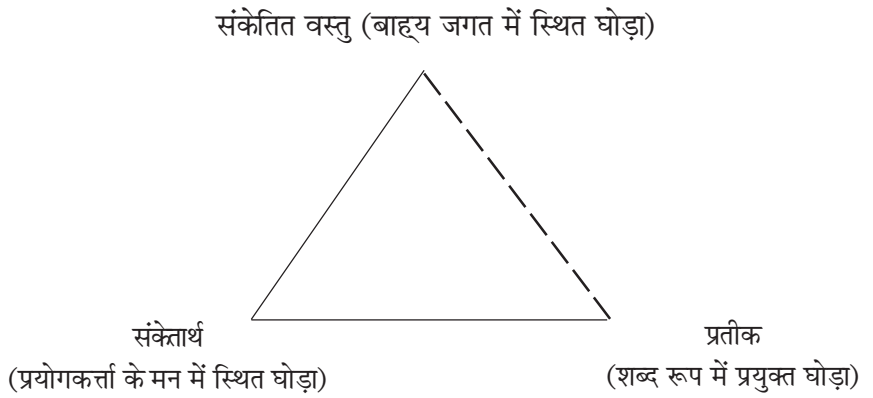

दिखाती। अर्थात् संकेतित वस्तु को सीधे प्रतीक के माध्यम से व्यक्त नहीं किया जाता बल्कि इस प्रयोग के लिए पहले प्रयोगकर्त्ता के मन में संकेतार्थ (concept)का होना आवश्यक है। इस संकेतार्थ के निमार्ण में प्रयोगकर्त्ता का इतिहास, सभ्यता और संस्कृति विशेष योगदान देते हैं।

भाषिक प्रतीक अपनी मूल प्रकृति में ध्वनिपरक हैं

भाषिक प्रतीक के दो अंग हैं- कथ्य और अभिव्यक्ति। 'कथ्य'से तात्पर्य प्रतीक के संकेतार्थ से है जबकि 'अभिव्यक्ति' इस संकेतार्थ को व्यक्त करने वाला ध्वनिसमूह है। उदाहरण के लिए 'घोड़ा' शब्द का 'कथ्य' इसका संकेतार्थ है जबकि 'अभिव्यक्ति' इस शब्द का ध्वनि संयोजन-घ+ओ+ड़+आ।

वागेन्द्रियों द्वारा निःसृत ध्वनियां ही भाषिक प्रतीक हैं

भाषिक प्रतीक ध्वनिपरक होता है पंरतु प्रत्येक ध्वनि प्रतीक भाषिक नही होता। उदाहरण के लिए सीटी, ताली, घंटी की ध्वनि पैदा कर अपने विचारों को संप्रेषित किया जा सकता है परंतु ये ध्वनि प्रतीक भाषिक नहीं कहे जा सकते। भाषिक प्रतीक का अभिव्यक्ति माध्यम मनुष्यों के वागेन्द्रिय निःसृत ध्वनियाँ हैं।

भाषिक प्रतीक अपनी प्रकृति में सामान्य हैं

कथ्य और अभिव्यक्ति के संबंधों के आधार पर प्रतीक तीन प्रकार के होते है-प्रतिमापरक, संकेतपरक और सामान्य प्रतीक।

प्रतिमापरक प्रतीक में कथ्य और अभिव्यक्ति के मध्य सादृश्य होता है। जैसे –किसी देश का 'चित्र' सादृश्य तत्व के आधार पर संकेतार्थ को व्यक्त करता है।

संकेतपरक प्रतीक में कथ्य और अभिव्यक्ति में कार्य कारण का सहज संबंध रहता है। जैसे–धुआं आग के होने का प्रतीक है।

सामान्य प्रतीक में कथ्य और अभिव्यक्ति के बीच संबंध यादृच्छिक और रूढ़िपरक होते हैं। यादृच्छिक होने के कारण कथ्य और अभिव्यक्ति में कोई नैसर्गिक संबंध नहीं होता। रूढ़िपरक होने के कारण कथ्य और अभिव्यक्ति का संबंध समाज द्वारा स्वीकृत मान्यता पर आधारित होता है।

भाषा प्रतीकों की व्यवस्था है

भाषा भाषिक प्रतीकों का जमघट न होकर उनकी एक व्यवस्था है और प्रत्येक मातृभाषी अपनी भाषा के प्रतीकों की इस व्यवस्था को पहचानता है। उदाहरण के लिए शब्द स्तर पर भाषिक प्रतीक 'कलम' या 'कमल' को हिंदी भाषी मान्यता देता है परंतु इन्हीं ध्वनियों के उस संयोजन को मान्यता नहीं देता जो 'मकल' या 'लकम' को जन्म देता है वाक्य स्तर पर भी हम इसी प्रकार की व्यवस्था को देखते हैं, जिसके चलते हिंदी भाषी वाक्य 'क' को तो स्वीकार करता है परंतु वाक्य 'ख' को नहीं, जबकि दोनों वाक्यों में समान शब्द हैं–

क) रमा ने उसकी किताब लौटा दी थी।

ख) थी दी रमा लौटा किताब ने उसकी।

इसी के साथ भाषिक प्रतीकों की व्यवस्था, भाषा सापेक्ष होती है और हर व्यवस्था कुछेक नियमों की अपेक्षा रखती है। हिंदी में अगर हम कर्त्ता+कर्म+क्रिया क्रम का निर्वाह करते हैं तो अंग्रेजी में कर्त्ता+क्रिया+कर्म का।

भाषिक प्रतीकों की व्यवस्था अपनी प्रकृति में सरंचनात्मक है

नियम ही भाषिक संरचना और उस सरंचना के आधार पर बने भाषिक प्रतीकों की अभिरचना का निर्माण करते हैं। संरचना भाषिक प्रतीकों की व्यवस्था न होकर उनके प्रकार्यों की व्यवस्था होती है। उदाहरण के लिए निम्न वाक्यों को देखें तो पाएंगे कि प्रतीकों की व्यवस्था समान (संज्ञा+संज्ञा+क्रिया) होने पर भी उनकी संरचनात्मक प्रकृति में अंतर है–

क) मोहन घर आएगा। (मोहन-सजीव कर्त्ता)

ख) पत्र घर आएगा। (पत्र-निर्जीव कर्त्ता)

यह संरचनात्मक प्रकृति का ही अंतर है कि वाक्य (क) की संरचना के विस्तार के रूप में हम कह सकते हैं कि मोहन जानबूझ कर घर नहीं आया जबकि वाक्य(ख)के संदर्भ में हम यह नहीं कह सकते हैं कि पत्र जानबूझ कर घर नहीं आया।

भाषा अभिव्यक्ति, संप्रेषण और सूचक प्रयोजन के लिए

अभिव्यक्ति संदर्भ में भाषा व्यक्ति के विभिन्न अनुभवों और विचारों की अभिव्यक्ति का साधन है।

संप्रेषण संदर्भ में भाषा बातचीत का माध्यम है। भाषा के सहारे हम न केवल सोचते-विचारते हैं बल्कि अपने विचारों को एक दूसरे तक संप्रेषित भी करते हैं।

सूचना संदर्भ में भाषा व्यक्ति की सामाजिक अस्मिताएँ, उसके सामाजिक पद तथा वक्ता और श्रोता के अंत: संबंधों की प्रकृति की सूचना देती है।

यदि भाषा के विभिन्न प्रयोजनों पर विचार करें तो हम यह कह सकते हैं कि भाषा एक 'कौशल' है। इसे 'कौशल' कहते ही इसके विभिन्न प्रयोजनों (अभिव्यक्ति, संप्रेषण, सूचक) में विशेषज्ञता की झलक मिलने लगती है। वास्तव में 'कौशल' वह योग्यता है जिसके सहारे व्यक्ति किसी विशेष क्षेत्र में मास्टरी हासिल करता है। भाषा के प्रयोजनों को देखते हुए भाषिक कौशलों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है क्योंकि इन कौशलों (सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना) के उचित विकास के बिना भाषिक प्रयोजन अंशत: ही प्राप्त हो पाते हैं। अत: इन कौशलों के विकास हेतु उचित शिक्षण विधियों के चयन की अपेक्षा प्रारंभ से ही बनी रहती है।

अभिक्रमित अनुदेशन, शिक्षण विधि के रूप में ऐसे विषयों के लिए प्रयोग में लाई जा सकती है जो कौशल आधारित हों क्योंकि इस विधि में विषय सामग्री का छोटे-छोटे पदों में तार्किक क्रम उपस्थित रहता है जो सोपान दर विद्यार्थियों को अंतिम व्यवहार तक ले जाता है। प्रत्येक पद के अंत में पूछे गए प्रश्न विद्यार्थियों को निरंतर अभ्यास के लिए प्रेरित करते हैं। इस उत्प्रेरणा का स्तर तब और भी अधिक हो जाता है जब विद्यार्थियों को निरंतर परिणामों की जानकारी मिलती रहती है। यह जानकारी कि वे सही दिशा (अंतिम व्यवहार) की ओर बढ़ रहे हैं या नहीं उनके लिए प्रेरणा का स्रोत बनती है।

भाषा प्रयोग एक ऐसा कौशल है जो हमारी प्रत्येक क्रिया से जुड़ा हुआ है और समाज के विभिन्न व्यक्तियों से अंत:क्रिया के समय प्रयुक्त होता है। भाषा के विभिन्न रूपों (मानक, औपचारिक, अनौपचारिक, राजभाषा) की जानकारी और उनका अवसरानुसार प्रयोग समय की मांग है। अत: इस कौशल से संबंधित जानकारी के लिए अभिक्रमित अनुदेशन को परंपरागत शिक्षण विधि की तुलना में चुना जा सकता है।

अभिक्रमित अनुदेशन के सिद्धांतों के आधार पर हिंदी की मुद्रित स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री का विकास

भाषा की प्रकृति और प्रयोजनों का गहराई से अध्ययन करने पर पता चलता है कि भाषा अध्ययन में विद्यार्थियों को जितना अधिक अभ्यास दिया जाए वह उनके लिए हितकारी होगा। यहाँ यह जोड़ना भी आवश्यक है कि जब बात दूरस्थ शिक्षा के संदर्भ में हो, जहां व्यक्तिगत भिन्नताओं का विस्तार कहीं अधिक होता है और जहाँ स्वाध्ययन अधिगम का मूल आधार है तब अभिक्रमित अनुदेशन के महत्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसलिए विषयसामग्री के तार्किक व्यवस्थीकरण की आवश्यकता और बढ़ जाती है तथा विद्यार्थियों के उत्प्रेरणा स्तर और रूचि को बनाए रखने के लिए एवं एकाकीपन की भावना को दूर करने के लिए विद्यार्थियों को उनके अधिगम परिणामों की जानकारी देना भी आवश्यक हो जाता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए **स्कूल ऑफ ओपन लर्निंग (**दिल्ली विश्वविद्यालय**) में बी. कॉम (पास) प्रथम वर्ष के लिए निर्धारित हिंदी पाठ्यक्रम** के लिए स्व अनुदेशनात्मक सामग्री के विकास के लिए अभिक्रमित अनुदेश के सिद्धांतों को आधार बनाया गया।

प्रतिदर्श रूप में इस पाठ्यक्रम के निम्नलिखित प्रकरणों का चुनाव किया गया :-

- मानक हिंदी: स्वरूप और विशेषताएँ।
- राष्ट्रभाषा, राजभाषा और संपर्क भाषा के रूप में हिंदी।
- अशुद्धि शोधन (शब्दगत और वाक्यगत)

उपर्युक्त प्रकरणों पर स्व अनुदेशनात्मक सामग्री के विकास हेतु निम्नलिखित सोपानों को अपनाया गया है:-

- शीर्षकों का चुनाव
- विद्यार्थियों के संदर्भ में अवधारणाएं लिखना
- विषयवस्तु विश्लेषण

- व्यवहारगत उद्देश्यों को लिखना
- कार्यक्रम प्रकार निर्धारण(रेखीय या शाखीय)
- अनुक्रमता (sequencing), अनुबोधकता (prompting) फेडिंग (fading) आदि का निर्धारण
- अभिक्रम लेखन
- संपादन और प्रथम प्रारूप का संशोधन
- व्यक्तिगत एवं सामूहिक जाँच
- आवश्यक संशोधन

रेखीय शैली के आधार पर निर्मित स्व अनुदेशनात्मक मुद्रित सामग्री के अंतर्गत पदों को तार्किक रूप से व्यवस्थित किया गया। विषय सामग्री के अनुसार कहीं नियम-उदाहरण विधि (रूलेज) और कहीं उदाहरण-नियम विधि (एजरूल) का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार विद्यार्थियों की त्रुटि दर को कम करने के लिए अनुबोधकों को यथास्थान रखा गया है। सूचना और अभ्यास पदों के बाद विद्यार्थियों के अधिगम परीक्षण हेतु अंतिम पदों में फेडिंग का प्रयोग किया गया है। इस अंतिम पद में से सभी अनुबोधकों को हटाते हुए केवल शीर्षक से संबंधित प्रश्न रखे गए हैं। और विद्यार्थियों को उनके प्रयासों की जानकारी भी उपलब्ध कराई गई है। इस प्रकार निर्मित स्व अनुदेशनात्मक सामग्री के प्रथम प्रारूप का संपादन (तकनीकी परिशुद्धि एवं अभिक्रम शैली संपादन) किया गया। इस संपादित सामग्री के विषय में विद्यार्थियों को जानने एवं अभिक्रम संशोधन के लिए व्यक्तिगत एवं सामूहिक जाँच की गई है। व्यक्तिगत और सामूहिक जांच के लिए क्रमशः 1 और 10 विद्यार्थियों को यादृच्छिक रूप से लिया गया है। विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत कठिनाइयों को संशोधन का आधार बनाते हुए शोधकत्री द्वारा स्व अनुदेशनात्मक सामग्री के अंतर्गत सूचना पैनलों को जोड़ा गया ताकि विद्यार्थी आगे आने वाले अभिक्रमों का सही उत्तर देने के लिए इन पैनलों का प्रयोग कर सकें। इसके अतिरिक्त मानक भाषा के इतिहास और परंपरा से संबंधित विस्तृत जानकारी को संपूरक सामग्री के रूप में परिशिष्ट में भी रखा गया।

विकसित स्व अनुदेशनात्मक भाषिक सामग्री पर विषय विशेषज्ञों के सुझाव

विकसित स्व अनुदेशनात्मक भाषिक सामग्री की उपयुक्तता पर विषय विशेषज्ञों की

राय एवं सुझाव आमंत्रित करने के उद्देश्य से स्कूल ऑफ ओपन लर्निंग (दिल्ली विश्वविद्यालय) और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के विषय विशेषज्ञों से अनौपचारिक साक्षात्कार के माध्यम से महत्वपूर्ण जानकारी एकत्रित की गई। भाषिक दक्षता अर्जन और अभिक्रमित अनुदेशन के मध्य संबंधों को देखते हुए विषय विशेषज्ञों द्वारा मुख्य रूप से यह सुझाव दिया गया कि यह सामग्री परंपरागत सामग्री के साथ सम्मिलित रूप में प्रयोग में लाई जानी चाहिए क्योंकि परंपरागत सामग्री के अंतर्गत पर्याप्त मात्रा में अभ्यास कार्य उपलब्ध न होने के कारण विद्यार्थी स्व मूल्यांकन से वंचित रह जाते हैं। अभिक्रमित अनुदेशन के सिद्धांतों पर आधारित यह सामग्री अभ्यास और तुरंत पुष्टि प्रदान कर विद्यार्थियों के एकांकीपन की भावना को दूर करने में निश्चित ही सहायक हो सकती है एवं इस प्रकार से तैयार सामग्री उन विद्यार्थियों के लिए अति फलदायी हो सकती है जो मानक भाषा, राष्ट्रभाषा, राजभाषा और संपर्क भाषा जैसी संकल्पनाओं का पहली बार अध्ययन कर रहे हों तथा जो इसका मूलभूत ज्ञान प्राप्त करना चाहते हों।

निष्कर्ष

दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत मुद्रित स्व अनुदेशनात्मक सामग्री का अति महत्वपूर्ण स्थान है। अत: इसके निर्माण में परंपरागत उपागमों से हटकर नवीन उपागमों का प्रयोग होता रहना चाहिए। विषय विशेषज्ञों के सुझावों को आधार बनाते हुए यह कहा जा सकता है कि स्व अनुदेशनात्मक सामग्री का स्वरूप क्या हो अथवा उसके निर्माण में किस उपागम का प्रयोग किया जाए, यह पूर्णतया उन विद्यार्थियों के स्तर पर निर्भर करता है जो इसका प्रयोग करने जा रहे हैं। जहां तक अभिक्रमित अनुदेशन के सिद्धांतों पर आधारित स्व अनुदेशनात्मक सामग्री के विकास एवं इसके औचित्य पर चर्चा की जाए तो कहा जा सकता है कि इस प्रकार की सामग्री ऐसे विद्यार्थियों के लिए विशेष लाभकारी हो सकती है जो किसी विषय का अध्ययन पहली बार कर रहे हों अथवा ऐसे विषय जिनका 2 या 3 वर्षों के अंतराल पर फिर से अध्ययन किया जाना आवश्यक होता है जैसे कि प्रस्तुत शोध पत्र के अंतर्गत लिए गए बी.कॉम का हिंदी पाठ्यक्रम जिसके छात्र दसवीं कक्षा के बाद 2 वर्षों के अंतराल पर फिर से हिंदी विषय का अध्ययन करते हैं।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 3, दिसंबर 2008

शोध टिप्पणी/संवाद

माध्यमिक स्तर की छात्राओं पर परम्परागत शिक्षण, अग्रिम संगठन प्रतिमान तथा रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन का प्रभाव

शिरीष बालिया* और अर्चना पुरोहित**

मनुष्य की कभी न शांत होने वाली पिपासा सदैव कुछ न कुछ करने को प्रवृत्त रहती है और शिक्ष का क्षेत्र, जिसके पास अनंत भण्डार है, उसके विशेषज्ञ इस बात को लेकर चिंतित रहते है कि शिक्षा के क्षेत्र में उस ज्योति पुंज को कैसे प्रज्जवलित किया जाए जिसके प्रकाश में अनुदेशात्मक उद्देश्य स्वयंमेव ही जगमगा उठे। अनुभव इस बात के साक्षी हैं कि यहां कोई एक सुनिश्चित मार्ग नहीं है जिसके द्वारा हम सुनिश्चित समस्त अनुदेशात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकें। गेज (1964) ने कहा कि ''शिक्षण के अंतर्गत इतनी अधिक क्रियाएं-प्रतिक्रियाएं होती है कि कोई एक सिद्धांत प्रत्येक विषय के लिए नहीं हो सकता इसलिए हमें ऐसे अनेक मार्गों की आवश्यकता है जिससे कि उचित वातावरण का सृजन किया जा सके। अत: शिक्षा के क्षेत्र में ऐसे अनुसंधानों की आवश्यकता है ताकि सफर सुगम हो सके।

शिक्षण प्रक्रिया के अंतर्गत अपेक्षित क्रियाओं एवं साधनों की समुचित व्यवस्था करनी पड़ती है और सीखने के लिए समुचित परिस्थितियों की रूपरेखा बनानी पड़ती है। शिक्षण के उद्देश्यों का निर्धारण सामाजिक एवं राजनैतिक विचारकों एवं दार्शनिकों के द्वारा समाज के व्यापक पक्षों एवं मूल्यों को ध्यान में रखकर किया जाता है। शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए समुचित व्यूह रचना का चुनाव करती है और उनका प्रयोग

* आचार्य एवं ****** प्रवक्ता शाह गोवर्द्धनलाल काबरा शिक्षक महाविद्यालय (सी.टी.ई.), जोधपुर

करती हैं। व्यूह रचना के प्रयोग के पश्चात् मूल्यांकन किया जाता है कि कहां तक उन उद्देश्यों की प्राप्ति हो सकती है।

बदलते संदर्भ में शिक्षण और शिक्षकों की भूमिकाओं के प्रत्यय में भी परिवर्तन आया है। आज शिक्षण को शिक्षक- शिक्षार्थी के परस्पर सांझे मूल्यों और विश्वास पर आधारित निर्मित वातावरण के रूप में देखा जाता है। जौयसी और विल (1985) ने बताया कि शिक्षण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा विद्यार्थी बेहतर समायोजन के लिए अपने व्यवहार प्रतिमानों में वांछित स्तर तक परिवर्तन कर पाए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जैसा कि ट्रेवर्स (1973) ने सुझाया है आज के शिक्षक को विभिन्न अधिगम क्रियाओं को संगठित करने के साथ-साथ मूलभूत शिक्षण कौशलों यथा-व्याख्या में दक्ष होना आवश्यक है।

शिक्षण एक विज्ञान भी है क्योंकि शिक्षण की क्रियाएं सामाजिक संदर्भ में सम्पादित की जाती है जिनका निरीक्षण एवं विश्लेषण किया जा सकता है। शिक्षण की क्रियाओं का अध्ययन वस्तुनिष्ठ रूप से किया जा सकता है। पृष्ठपोषण की प्रविधियों से छात्रों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाया जा सकता है। प्राय: ही यह प्रश्न उठता है कि शिक्षक-प्रशिक्षण क्यों? और एक छोटा सा उत्तर दे दिया जाता है कि शिक्षक की प्रभवोत्पादकता के संबंध में समय-समय पर विचार बदलते रहते हैं क्योंकि शिक्षण के उद्देश्य तथा विषय-वस्तु बदलती रहती है। शिक्षण तकनीकी में परिवर्तन के कारण भी शिक्षक प्रभावोत्पादकता से संबंधित विचार बदलते रहते हैं। जैसे-जैसे शिक्षण तकनीकी का विकास बढ़ता गया वैसे-वैसे शिक्षण में भी समस्याएं बढ़ती गयी और यह एक समस्या बन गयी कि ज्ञान के विशाल भंडार में से उपयोगी ज्ञान छात्रों तक कैसे पहुंचाया जा सके और उनमें विशिष्ट कौशलों को विकसित किया जा सके। व्यवहार परिवर्तन के क्षेत्र में भी कुछ शोधकार्य सम्पन्न किए गये। राष्ट्रीय अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद् के अतंर्गत एक शिक्षा तकनीकी केंद्र स्थापित किया गया है। इस केंद्र का कार्य शिक्षण तकनीकी के ज्ञान का प्रसार करना तथा शोध कार्यों द्वारा शिक्षण प्रक्रिया कर विकास करना तथा प्रभावशाली बनाना है। एलिस (1979) के अनुसार कक्षा-कक्ष की स्थिति में शिक्षण-अधिगम शैली में उत्पन्न असमन्जस की स्थिति में शिक्षण प्रतिमान एक समाधान स्वरूप है। शोधकर्ता ने वर्तमान अध्ययन के लिए अग्रिम संगठन प्रतिमान व रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन का चयन किया है और इसका चयन

इसलिए किया कि वर्तमान समय में सभी विषयों में एवं शिक्षा के सभी स्तरों विशेषतया उच्च स्तर पर व्याख्यान विधि का प्रयोग प्रमुख रूप से किया जाता है अग्रिम संगठन प्रतिमान व रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन से शिक्षण को अर्थपूर्ण बनाने का प्रयास किया जाता है और अर्थपूर्ण अधिगम की स्थिति में छात्र मानसिक रूप से सक्रिय रहते है साथ ही अमूर्त पाठ्यवस्तु के शिक्षण में इसके प्रयोग के द्वारा सम्प्रत्ययों एवं तथ्यों के बोध से ज्ञान पुंज का विकास और अर्थपूर्ण अधिगम बहुत ही महत्वपूर्ण है। जब तक विद्यार्थी सही ढंग से विषय–वस्तु के अर्थ को भी नहीं समझ पाएगें । इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए विज्ञान शिक्षण के लिए अग्रिम संगठन प्रतिमान व रेखीय अभिक्रमित– अनुदेशन का चयन किया है। इनकी प्रभावशीलता के साथ–साथ यह भी प्रश्न उठता है कि कौन सी विधि ज्ञान–अवधारण के लिए अधिक प्रभावी है। मात्र उपलब्धि ही किसी को अपनाने का मानदंड नहीं हो सकता बल्कि यह जानना भी आवश्यक है कि जिस चीज का शिक्षण किया गया है उसका ज्ञान– अवधारण हो रहा है। अथवा नहीं।

उपरोक्त तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए हमने अग्रिम संगठन प्रतिमान व रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन की प्रभावशीलता का अध्ययन करने की आवश्यकता अनुभव की।

अध्ययन के उद्देश्यः–

- माध्यमिक स्तर की छात्राओं की परम्परागत शिक्षण द्वारा उपलब्धि पर प्रभावशीलता का अध्ययन करना।
- माध्यमिक स्तर की छात्राओं के अवधारणा हेतु परम्परागत शिक्षण की प्रभावशीलता का अध्ययन करना।
- माध्यमिक स्तर की छात्राओं को अग्रिम संगठन प्रतिमान से शिक्षण द्वारा उपलब्धि पर प्रभावशीलता का अध्ययन करना।
- माध्यमिक स्तर की छात्राओं के अवधारण हेतु अग्रिम संगठन प्रतिमान की प्रभावशीलता का अध्ययन करना।
- माध्यमिक स्तर की छात्राओं को रेखीय अभिक्रत अनुदेशन से शिक्षण से उपलब्धि पर प्रभावशीलता का अध्ययन करना।

- माध्यमिक स्तर की छात्राओं के अवधारण हेतु रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन की प्रभावशीलता का अध्ययन करना।
- माध्यमिक स्तर की छात्राओं की परम्परागत शिक्षण, अग्रिम संगठन प्रतिमान तथा रेखीय अभिक्रमित अनुदेशरान द्वारा शिक्षण की प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएं

- माध्यमिक स्तर की छात्राओं पर परम्परागत शिक्षण का उनकी उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ेगा।
- माध्यमिक स्तर की छात्राओं के अवधारण पर परम्परागत शिक्षण का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ेगा।
- माध्यमिक स्तर की छात्राओं के अग्रिम संगठन प्रतिमान द्वारा शिक्षण का उनकी उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ेगा।
- माध्यमिक स्तर की छात्राओं के अवधारण पर अग्रिम संगठन प्रतिमान का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ेगा।
- माध्यमिक स्तर की छात्राओं पर रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन द्वारा शिक्षण का उनकी उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ेगा।
- माध्यमिक स्तर की छात्राओं के अवधारण पर रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ेगा।
- माध्यमिक स्तर की छात्राओं पर परम्परागत शिक्षण,अग्रिम संगठन प्रतिमान व रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन द्वारा शिक्षण का उनकी उपलब्धि पर कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

अध्ययन में प्रयुक्त न्यादर्श

प्रस्तुत शोधकार्य हेतु जोधपुर शहर के माध्यमिक विद्यालय स्तर की छात्राओं का चयन किया गया है। छात्राओं के लिए 5 विद्यालयों का चयन किया गया है। जिसमें 3 समूह बनाए गए और उसमें 40 की संख्या में छात्राओं को चुना गया अर्थात600 छात्राओं का

चयन किया गया। निम्न तालिका के द्वारा जोधपुर शहर के विभिन्न माध्यमिक विद्यालयों में से चुने न्यादर्श दर्शाये गये हैं–

तालिका - 1

जोधपुर शहर के वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालयों के छात्राओं का न्यादर्श रूप से संख्यात्मक विवरण

क्र. सं	विद्यालय का नाम	नियंत्रित समूह	प्रथम प्रायोगिक समूह	द्वितीय प्रयोगिक समूह
1.	जमुनादेवी सी. सै विद्यालय	40	40	40
2.	जयनारायण व्यास बालिका सी. सै. विद्यालय	40	40	40
3.	सोहनलाल मनिहार सी. सै. विद्यालय	40	40	40
4.	राजकीय बालिका सी. सै. विद्यालय राजमहल	40	40	40
5.	राजकीय बालिका सी. सै. विद्यालय, जालोरी गेट	40	40	40
	योग	200	200	200
				600

परिसीमन– शोधकार्य हेतु निम्न प्रकार से सीमांकन किया गया–

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन में जोधपुर शहर के माध्यमिक विद्यालयों को ही चयनित किया गया।
2. इस अध्ययन में विज्ञान विषय की इकाइयों को ही सम्मिलित किया गया है।
3. अध्ययन में लिंग व बुद्धि के आधार पर ही समूह बनाए गए।
4. प्रस्तुत अध्ययन में अग्रिम संगठन प्रतिमान व रेखीय अभिक्रम का ही प्रयोग किया गया।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त विधि

शोध अध्ययन की सफलता में अपनाई गई अध्ययन विधि का अत्याधिक महत्व है। शिक्षा के क्षेत्र में विस्तृत समस्याओं के अध्ययन में अनेक विधियों को प्रयुक्त किया जाता है प्रस्तुत अध्ययन में प्रायोगिक विधि का चयन किया गया जो ''प्रायोगिक समूह-निंयत्रित समूह-मिलानी विषयी'' (Experimental Group-Control Group-Matched Subject) प्रारूप पर आधारित है।

शोध अध्ययन में उपकरण सांख्यिकी

इस शोध अध्ययन में परीक्षणों द्वारा प्राप्त आंकड़ों का आवृत्ति वितरण तैयार किया गया। इस आवृत्ति-वितरण के आधार पर मध्यमान, प्रमाप-विचलन, टी-परीक्षण तथा प्रसरण-विश्लेषण प्रविधि का प्रयोग किया गया।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

शोध अध्ययन के लिए तथ्य संकलन हेतु निम्नलिखित परीक्षणों का प्रयोग किया - (1) बुद्धि परीक्षण (2) स्वनिर्मित उपलब्धि परीक्षण (3) अग्रिम संगठक प्रतिमान पर आधारित पाठ योजना (4) रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन पर आधारित अभिक्रम।

(1) बुद्धि परीक्षण

डॉ. एस. जलोटा द्वारा निर्मित बुद्धि परीक्षण का उपयोग विद्यार्थियों की बुद्धिलब्धि का मापन के लिए किया। इस परीक्षण में 7 आयाम के लिए कुल 100 पद है। इसे प्रशासित करने का समय 20 मिनट है। बुद्धिलब्धि ज्ञात करने का सूत्र निम्नलिखित हैं

$$\text{बुद्धिलब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \times 100$$

(2) स्वनिर्मित उपलब्धि परीक्षण

परम्परागत शिक्षण, अग्रिम संगठन प्रतिमान व रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन की प्रभावशीलता का अध्ययन विद्यार्थियों की उपलब्धि के आधार पर किया गया। उपलब्धि को मापन के लिए उपलब्धि परीक्षण का निर्माण किया। इस परीक्षण को

पूर्व परीक्षा, पश्च परीक्षा के रूप में प्रयोग किया। यह परीक्षण माध्यमिक स्तर के विज्ञान विषय से संबंधित इकाई पर निर्मित किया।

(3) अग्रिम संगठन परीक्षण

इस प्रतिमान में कई पद हैं जिन्हें ध्यान में रखकर विज्ञान के ''प्रजनन'' प्रकरण पर पाठ बनाया गया और इन पदों को ध्यान में रखकर ही पढ़ाया गया।

(4) रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन

विज्ञान विषय के ''प्रजनन'' प्रकरण पर रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन का निर्माण किया फिर एक समूह पर प्रशासित करके त्रुटि दर ज्ञात की। इसकी सहायता से अभिक्रम में संशोधन करके पुनः पदों की रचना की गई।

तथ्यों का विश्लेषण

तालिका - 2

छात्राओं की परम्परागत शिक्षण विधि द्वारा उपलब्धि पर प्रभाव से संबंधित सारणीयन

क्र. सं	विद्यालय का नाम	मध्यमान समूह		प्रमाप विचलन समूह		t का मान
		पूर्व परीक्षण	पश्च परीक्षण	पूर्व परीक्षण	पश्च परीक्षण	
1.	जमुनादेवी सी. सै विद्यालय	11.60	19.75	2.18	2.98	14.29
2.	जयनारायण व्यास बालिका सी. सै. विद्यालय	12.17	18.17	3.00	3.67	8.10
3.	सोहनलाल मनिहार सी. सै. विद्यालय	10.55	16.35	2.68	3.07	9.20
4.	राजकीय बालिका सी. सै. विद्यालय राजमहल	10.92	15.70	2.83	2.63	7.83
5.	राजकीय बालिका सी. सै. विद्यालय, जालोरी गेट	11.07	15.20	2.55	2.49	7.50

उपरोक्त तालिका में छात्राओं पर परम्परागत शिक्षण विधि द्वारा उनकी उपलब्धि पर प्रभावशीलता के मध्यमान व प्रमाप विचलन दर्शाया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि परम्परागत शिक्षण का उपलब्धि पर प्रभाव पड़ा है। लगभग सभी विद्यालयों की छात्राओं के पूर्व एवं पश्च परीक्षण के मध्यमानों में अंतर पाया गया और पश्च परीक्षण के मध्यमान .05 विश्वास स्तर के मूल्य 1.96 से अधिक है इस आधार पर कहा जा सकता है कि छात्राओं पर परम्परागत शिक्षण विधि का उनकी उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पड़ा है।

तालिका - 3

छात्राओं के अवधारण पर परम्परागत शिक्षण विधि के प्रभाव से संबंधित सारणीयन

क्र. सं	विद्यालय का नाम	मध्यमान समूह		प्रमाप विचलन समूह		t का मान
		पश्च परीक्षण	अवधारणा परीक्षण	पश्च परीक्षण	अवधारणा परीक्षण	
1.	जमुनादेवी सी. सै विद्यालय	19.75	15.80	2.98	2.98	5.89
2.	जयनारायण व्यास बालिका सी. सै. विद्यालय	18.17	16.60	3.67	3.23	2.03
3.	सोहनलाल मनिहार सी. सै. विद्यालय	16.35	14.70	3.07	2.58	2.61
4.	राजकीय बालिका सी. सै. विद्यालय राजमहल	15.70	14.15	2.63	2.41	2.76
5.	राजकीय बालिका सी. सै. विद्यालय, जालोरी गेट	15.20	13.73	2.49	2.76	2.49

उपरोक्त तालिका देखने से स्पष्ट होता है कि परम्परागत शिक्षण विधि का छात्राओं के अवधारण पर प्रभाव पड़ा है। लगभग सभी विद्यालयों की छात्राओं के पश्च व अवधारण परीक्षण के मध्यमानों में अंतर है तथा मध्यमानों में अंतर के लिए टी का मान भी .05 विश्वास स्तर के मूल्य 1.96 से अधिक है।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि छात्राओं के अवधारण पर परम्परागत शिक्षण का सार्थक प्रभाव पड़ा है।

तालिका - 4

छात्राओं के अग्रिम संगठक प्रतिमान द्वारा उपलब्धि पर प्रभाव से संबंधित सारणीयन (N=40)

क्र. सं	विद्यालय का नाम	मध्यमान समूह		प्रमाप विचलन समूह		t का मान
		पूर्व परीक्षण	पश्च परीक्षण	पूर्व परीक्षण	पश्च परीक्षण	
1.	जमुनादेवी सी. सै विद्यालय	12.30	21.05	2.44	4.11	11.82
2.	जयनारायण व्यास बालिका सी. सै. विद्यालय	12.00	20.55	2.32	3.88	12.21
3.	सोहनलाल मनिहार सी. सै. विद्यालय	11.80	20.30	2.38	3.53	12.68
4.	राजकीय बालिका सी. सै. विद्यालय राजमहल	11.50	19.40	1.84	3.27	13.38
5.	राजकीय बालिका सी. सै. विद्यालय, जालोरी गेट	11.55	20.75	1.97	4.33	12.43

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि अग्रिम संगठक प्रतिमान का छात्राओं की उपलब्धि पर प्रभाव पड़ा है क्योंकि दोनों परीक्षण के मध्यमानों में अंतर आया हैं तथा पश्च परीक्षण का मध्यमान पूर्व परीक्षण के मध्यमान से अधिक है। दोनों परीक्षणों के मध्यमानों में अंतर की सार्थकता के लिए t परीक्षण की गणना की गई तथा t का मूल्य .05 विश्वास स्तर के मूल्य से अधिक पाया गया अत: कहा जा सकता है कि छात्राओं पर अग्रिम संगठक प्रतिमान का उनकी उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पड़ा है।

तालिका - 5

छात्राओं के अवधारण पर अग्रिम संगठक (10) प्रतिमान के प्रभाव से संबंधित सारणीयन (N=40)

क्र. सं	विद्यालय का नाम	मध्यमान समूह		प्रमाप विचलन समूह		t का मान
		पश्च परीक्षण	अवधारणा परीक्षण	पश्च परीक्षण	अवधारणा परीक्षण	
1.	जमुनादेवी सी. सै विद्यालय	21.05	19.42	4.11	3.07	2.01
2.	जयनारायण व्यास बालिका सी. सै. विद्यालय	20.55	18.07	3.88	2.72	3.35
3.	सोहनलाल मनिहार सी. सै. विद्यालय	20.30	18.32	3.53	3.50	2.53
4.	राजकीय बालिका सी. सै. विद्यालय राजमहल	19.40	17.90	3.27	3.43	2.38
5.	राजकीय बालिका सी. सै. विद्यालय, जालोरी गेट	20.75	19.00	4.33	3.55	2.01

उपरोक्त तालिका में छात्राओं के अवधारण पर अग्रिम संगठन प्रतिमान द्वारा उनकी उपलब्धि पर प्रभावशीलता को दर्शाया गया है। तालिका देखने से स्पष्ट होता है कि अग्रिम संगठक प्रतिमान का प्रभाव पड़ा है क्योंकि उन पर प्रशासित दोनों परीक्षण के मध्यमान में अंतर आया है और अवधारण परीक्षण का मध्यमान, पश्च परीक्षण के मध्यमान से अधिक है। दोनों के मध्यमानों में अंतर की सार्थकता के t परीक्षण की गणना कर .05 विश्वास स्तर पर t मूल्य ज्ञात किया गया जो कि अवधारण परीक्षण का अधिक है जिससे स्पष्ट होता है कि छात्राओं के अवधारण पर अग्रिम संगठक प्रतिमान का उनकी उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पड़ा है।

तालिका - 6

छात्राओं की रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन द्वारा उपलब्धि पर प्रभाव से संबंधित सारणीयन (N=40)

क्र. सं	विद्यालय का नाम	मध्यमान समूह		प्रमाप विचलन समूह		t का मान
		पूर्व परीक्षण	पश्च परीक्षण	पूर्व परीक्षण	पश्च परीक्षण	
1.	जमुनादेवी सी. सै विद्यालय	12.45	20.20	2.55	3.20	12.10
2.	जयनारायण व्यास बालिका सी. सै. विद्यालय	12.65	19.32	2.21	3.25	10.93
3.	सोहनलाल मनिहार सी. सै. विद्यालय	10.75	16.97	2.57	2.79	10.54
4.	राजकीय बालिका सी. सै. विद्यालय राजमहल	11.65	18.70	1.57	2.13	16.78
5.	राजकीय बालिका सी. सै. विद्यालय, जालोरी गेट	11.45	17.20	2.72	3.13	8.98

तालिका संख्या 6 में छात्राओं पर रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन द्वारा उनकी उपलब्धि पर प्रभावशीलता को दर्शाया गया। उपरोक्त दोनों परीक्षणों के मध्यमानों में अंतर आया है तथा मध्यमानों के अंतर की सार्थकता को जांचने के लिए t परीक्षण की गणना की गई। गणना में t मूल्य .05 विश्वास स्तर के मूल्य 1.96 से अधिक है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि दोनों परीक्षणों के मध्यमानों के बीच सार्थक अंतर है अर्थात् छात्राओं पर रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन का उनकी उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पड़ा है।

तालिका - 7

छात्राओं के अवधारण पर रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन के प्रभाव से संबंधित सारणीयन (N=40)

क्र. सं	विद्यालय का नाम	मध्यमान समूह		प्रमाप विचलन समूह		t का मान
		पश्च परीक्षण	अवधारणा परीक्षण	पश्च परीक्षण	अवधारणा परीक्षण	
1.	जमुनादेवी सी. सै विद्यालय	20.20	15.97	3.20	2.71	6.50
2.	जयनारायण व्यास बालिका सी. सै. विद्यालय	19.32	17.40	3.25	3.30	2.67
3.	सोहनलाल मनिहार सी. सै. विद्यालय	16.97	15.50	2.79	3.29	2.16
4.	राजकीय बालिका सी. सै. विद्यालय राजमहल	18.70	17.63	2.13	2.34	2.18
5.	राजकीय बालिका सी. सै. विद्यालय, जालोरी गेट	17.20	15.97	3.13	2.80	1.86

उपरोक्त तालिका को देखने से स्पष्ट होता है कि रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन का छात्राओं के अवधारण पर प्रभाव पड़ा है क्योंकि उन पर प्रशासित परीक्षण के मध्यमानों में अंतर आया है और अवधारण परीक्षण का मध्यमान अपेक्षाकृत अधिक है। परीक्षण के मध्यमानों का अंतर t मूल्य .05 विश्वासस्तर के मूल्य 1.96 से अधिक है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि दोनों परीक्षणों के मध्यमानों के बीच सार्थक अंतर है अर्थात छात्राओं के अवधारण पर रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन द्वारा उनकी उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पड़ा है।

तालिका - 8 (अ)

छात्राओं पर परम्परागत शिक्षण, अग्रिम संगठक प्रतिमान व रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन द्वारा उपलब्धि पर प्रभाव से संबंधित प्रसरण विश्लेषण का सारणीयन (N=600)

प्रसारण का स्त्रोत	स्वतंत्रता का अंश (d)	वर्गों का योग (Sum of Square)	मध्यमान वर्ग (Mean Square)	एफ (F)
समूहों के बीच	2	1400.110	700.055	64.169
समूहों के अन्दर	597	6512.955	10.909	

छात्राओं के लिए शिक्षण की तीनों विधियों द्वारा प्राप्त मध्यमानों के बीच अंतर सार्थक है या नहीं इसके प्रसरण-विश्लेषण सांख्यिकी का प्रयोग किया गया। उपरोक्त सारणी को देखने पर ज्ञात होता है कि एफ का मान 64.169 है जो 2.5597 स्वतंत्रता अंश के लिए विश्वास स्तर पर सार्थक है अर्थात तीनों शिक्षण विधियों से पढ़ायी गई छात्राओं की उपलब्धि के मध्यमानों में सार्थक अंतर है। यह देखने के लिए कि छात्राओं के लिए कौन सी शिक्षण विधि अधिक प्रभावी है इसके लिए t परीक्षण ज्ञात किया गया।

तालिका - 8 (ब)

समायोजित मध्यमानों को प्रदर्शित करती हुई तालिका

समूह	मध्यमान	प्रमाप विचलन	t का मान
परंपरागत शिक्षण	16.710	3.13	11.38
अग्रिम संगठक प्रतिमान	20.395	3.69	4.31
रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन	17.990	3.04	7.28

समायोजित मध्यमानों के बीच t का प्राप्त मूल्य उपरोक्त तालिका में दर्शाया गया है जो कि 199 स्वतंत्रताओं के लिए .05 विश्वास स्तर पर सार्थक है जिसका अर्थ यह है कि

तीनों विधियों के प्राप्त मध्यमानों के बीच सार्थक रूप से अंतर है। अग्रिम संगठक प्रतिमान द्वारा पढ़ाई गई छात्राओं की उपलब्धि परीक्षणपर मध्यमान परम्परागत शिक्षण विधि व रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन की तुलना में सार्थक रूप से अधिक है। तथ्यों का विश्लेषण करने के पश्चात् निष्कर्ष रूप से यह कह सकते हैं कि परम्परागत शिक्षण व रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन की तुलना में अग्रिम संगठक प्रतिमान का छात्राओं की उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पड़ा है क्योंकि प्रसरण विश्लेषण के परिणामों में एफ का मान व t का मूल्य सार्थक है तथा अग्रिम सगंठक प्रतिमान द्वारा पढ़ायी गयी छात्राओं की उपलब्धि परीक्षण का मध्यमान भी अधिक है अर्थात् छात्राओं की उपलब्धि व अवधारण पर अग्रिम संगठक प्रतिमान अधिक प्रभावी है।

निष्कर्ष

तथ्यों का विश्लेषण एवं व्याख्या के पश्चात् यह पाया गया कि रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन का छात्राओं की उपलब्धि पर भाव पड़ा है क्योंकि उन पर प्रशासित पूर्व व पश्च परीक्षण के मध्यमानों में अंतर आया है। इन मध्यमानों के अंतर t मूल्य भी सार्थक है अर्थात छात्राओं पर रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन का उपलब्धि पर प्रभाव पड़ा है। प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर कह सकते हैं कि रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन का छात्राओं के अवधारण पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि उन पर प्रशासित पश्च एवं अवधारण परीक्षण के मध्यमानों में अंतर पाया गया है।

प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर यह कह सकते हैं कि परम्परागत शिक्षण व रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन की तुलना में अग्रिम संगठक प्रतिमान का छात्राओं की उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पड़ा है क्योंकि प्रसरण– विश्लेषण के परिणामों में एफ का मान व t का मूल्य सार्थक है तथा अग्रिम संगठक प्रतिमान द्वारा पढ़ाए गए छात्राओं का उपलब्धि परीक्षण पर मध्यमान भी अधिक है। अत: सार रूप से यह कहा जा सकता है कि छात्राओं की उपलब्धि व अवधारण पर अग्रिम संगठक प्रतिमान अधिक प्रभावी है।

संदर्भ

आसुबेल, डी.पी. ''द *साइकोलॉजी ऑफ मिनींगफुल लर्निंग*'', न्यूयार्क ग्रीन एण्डस्टेटेन

अग्रवाल, वाई.पी. ''*स्टैटिस्टिकल मेथड्स कॉन्सेप्ट एप्लीकेशन एण्ड कम्प्यूटेशन*'' सैकिण्ड रिवाइण्ड एडिशन, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्रा.लि.

भाटिया, ए. तथा कुलप्रेष्ठ एस. *विज्ञान कक्षा- दसवीं*, श्रीयांस पब्लिकेशन प्रा.लि.जयपुर

बेस्ट, जे. डब्लू ''*रिसर्च इन एजुकेशन*, प्रिन्टिस हॉल ऑफ इंडिया, प्राईवेट लिमिटेड, न्यू दिल्ली पृ.स. 50.54

कर्लिंगर, एफ. एन. ''*फाउन्डेशन ऑफ रिसर्च*,'' न्यूयार्क यूनिवर्सिटी, सुर्जित पब्लिकेशन, कमला नगर, दिल्ली

गिलफोर्ड, जे.पी *फडामेन्टल स्टेटिस्टिकस साइकोलॉपी ऑफ एजुकेशल*, मैकग्रो विल बुक कम्पनी, न्यूयार्क

कुलकर्णी, एस.एस. ''*एन इन्ट्रोडक्शन टू प्रोग्राम लर्निंग,*''डिपार्टमेंट ऑफ साइकालोजी फाउन्डेशन, एन.सी.ई. आ.टी. न्यू दिल्ली

लेसोट, जे.पी. विलियम की, ''*हैण्डबुक ऑफ प्रोग्राम इन्सट्रक्शन,*'' न्यूयार्क, विले

शर्मा, आर.ए. ''*शिक्षा तकनीकी*'' लॉयल बुक डिपो, मेरठ

विद्यार्थी, आर.डी. एवं सहगल ''*वनस्पति विज्ञान*'' इंडियन प्रेस पब्लिकेशन प्रा.लि. इलाहाबाद

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 3, दिसम्बर 2008

शोध टिप्पणी/संवाद

सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत सेवाकालीन प्रशिक्षण पा रहे स्कूली शिक्षकों के समावेशी प्रशिक्षण कार्यक्रम का मूल्यांकन

कुमार संजीव* और सुधाकर प्रसाद सिंह**

प्राथमिक शिक्षा एक प्रकार की बुनियादी जरूरत है। इसी के मद्देनजर 86वें संशोधन के जरिये इसे मूल अधिकार का संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। इसका एक मात्र उद्देश्य था प्राथमिक शिक्षा को जन-जन तक पहुंचाना ताकि समाज के अंतिम पायदान पर जीवन बसर कर रहे लोगों के बच्चों, खासकर विकलांग बच्चों को भी इसका फायदा मिल सके। वर्ष 1960 में इस लक्ष्य की प्राप्ति की अवधि 10 वर्ष रखी गयी थी। फिर 10-10 वर्ष बढ़ायी जाने लगी। वर्ष 2000 तक इसी तरह यह लक्ष्य सरकता रहा। वर्ष 2000 में सर्व शिक्षा अभियान के तहत यह उम्मीद शब्दबद्ध की गई कि 2007 तक पूरे देश में यह लक्ष्य हासिल हो जाएगा। लेकिन अब सरकारी पंचवर्षीय योजनाओं के मूल्यांकन रिपोर्ट में कहा जा रहा है कि वर्ष 2010 तक यह लक्ष्य हासिल हो जाएगा।

सर्व शिक्षा अभियान के तहत प्राथमिक शिक्षा की रोशनी को देश की कुल आबादी के लगभग 12 प्रतिशत उन विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के पास पहुंच रही है जो दृष्टिबाधिता, श्रवणबाधिता, मानसिक अक्षमता, शारीरिक अक्षमता आदि विकलांगताओं में से किसी न किसी एक विकलांगता से ग्रस्त हैं। इसके अलावा ऐसे बच्चों की संख्या बड़ी है जो अधिगम अक्षमता से प्रभावित हैं। लेकिन विडम्बना यह है कि अधिकांश ऐसे बच्चों के शिक्षण-अधिगम का भार सरकारी स्कूल के सामान्य शिक्षकों के कंधे पर है। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के प्रति इन सामान्य शिक्षकों की अन्यमनस्क

* व्याख्याता, स्नातकोत्तर शिक्षा विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना-800004
* * अध्यापक, पटना ट्रेनिंग कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना-800004

मनोवृत्ति उन विशेष बच्चों के शिक्षण-अधिगम में बाधक सिद्ध होने लगी। संवेदनशीलता के अभाव में इन शिक्षकों को स्कूल की सामान्य कक्षा में शिक्षण-अधिगम कर रहे विशेष बालकों की समुचित देख-भाल में कठिनाई महसूस होने लगी। लिहाजा ऐसे विशेष बालक वर्ग कक्ष में उपेक्षित रहने का मजबूर होने लगे। इसी को ध्यान में रखते हुए न केवल भारत में बल्कि विश्व के अन्य देशों में भी सामान्य स्कूली शिक्षकों को विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए कई कार्यक्रम चलाए जाने लगे। भारत में वर्ष 2006 में समावेशी शिक्षा को 'सर्वशिक्षा अभियान' में शामिल कर दिए जाने के बाद सरकारी स्कूलों में कार्यरत सामान्य शिक्षकों को विकलांग बच्चों के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए समावेशी शिक्षा की अल्पकालीन सेवाकालीन प्रशिक्षण दिए जाने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। इसी के मद्देनजर सर्व शिक्षा अभियान के तहत निर्मित प्रशिक्षण माड्यूलों के जरिये देश भर के सेवारत सरकारी शिक्षकों को अल्पकालीन प्रशिक्षण दी जाने लगी। इसके लिए कमोबेश हर राज्य में प्रशिक्षण माड्यूल का निर्माण हुआ और शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाने लगा।

बिहार में सरकारी शिक्षकों को सेवाकालीन प्रशिक्षण देने की जिम्मेवारी बिहार शिक्षा परियोजना परिषद् के कंधे पर है। परिषद् सर्व शिक्षा अभियान के तहत इसके लिए अब तक समर्थ (2006), संप्रेषण (2007) एवं अंतर्दृष्टि (2007) नामक समावेशी शिक्षा के तीन प्रशिक्षण माड्यूलों का विकास किया है। इसके पीछे दलील दी गई है कि समावेशन कोई प्रयोग नहीं जिसकी जांच की जाए। यह एक मूल्य है जिसका अनुसरण किया जा सकता है। सभी बच्चे, चाहे वे विकलांग हों अथवा नहीं, को शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार है। उन्हीं को भविष्य में देश का नागरिक बनना है। वैसे भी संसाधन के अभाव में सामान्य बच्चों को गुणवत्ता वाले मुख्यधारा के स्कूलों की सुविधा मयस्सर नहीं हो रहा ऐसे में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को मुख्यधारा के स्कूलों में दाखिले की जांच और अनुसंधान की बात बेमानी है (दास, 2006)। इसलिए सबसे पहले शिक्षकों को ऐसे विशेष बच्चों के प्रति संवेदनशील बनाना अनिवार्य है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) एवं समान स्कूल प्रणाली आयोग (2007) की अनुशंसाओं में भी विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के शिक्षकों को विशेष रूप से प्रशिक्षित किये जाने पर बल दिया गया है। साथ ही ऐसे बच्चों की पुनर्वास विशेषज्ञ की सेवा मुहैया कराने पर भी जोर दिया गया है। समान स्कूल प्रणाली आयोग ने माना कि

समेकित शिक्षा के केंद्र प्रायोजित योजनाओं में अपनाए जाने वाले मानकों के अनुसार आठ बच्चों पर एक शिक्षक वाला अनुपात भी समावेशी शिक्षा के मामले में फिट बैठता है। चूँकि यह मानक विद्यालय का दौरा करने वाले भ्रमणशील शिक्षकों पर आधारित है। अत: घरों और अस्पतालों का दौरा करने वाले शिक्षकों के लिए यह अनुपात 'प्रति छह बच्चा पर एक शिक्षक' रहने दिया जा सकता है।

शोध अध्ययन की तर्कसंगतता

बिहार में व्यापक पैमाने पर शिक्षकों को नियोजित किया गया और इनकी सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रारंभ कर दी गई। लेकिन वर्गकक्ष प्रदर्शन एवं अधिगम के बदलते स्वरूप के मद्देनजर इन शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों के मूल्यांकन की भी आवश्यकता महसूस की जाने लगी। साथ ही शिक्षकों से शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों के विभिन्न आयामों के बारे में फीडबैक हासिल करने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। इसलिए शोधकर्त्ताओं ने उपरोक्त शोध समस्या को शोध का विषय बनाया।

शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:-

(i) विशेष अवश्यकता वाले बच्चों के प्रति सामान्य शिक्षकों की संवेदनशीलता की जांच करना।

(ii) शिक्षक संवेदनशीलता के लिए विकसित किये गये ''सम्प्रेषण'' प्रशिक्षण माड्यूल का मूल्यांकन करना।

(iii) 'सम्प्रेषण' माड्यूल के जरिये दिए जा रहे सेवाकालीन समावेशी शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम का मूल्यांकन करना।

(iv) शिक्षकों से प्रशिक्षण कार्यक्रमों के विभिन्न आयामों का प्रतिसंभरण (फीडबैक) लेना।

शोध विधि

प्रतिदर्श एवं प्रतिदर्शन

जिला संसाधन केंद्र, वैशाली में समावेशी शिक्षा के अंतर्गत 'श्रवणबाधिता' विषयक 10 दिवसीय प्रशिक्षण माड्यूल 'संप्रेषण' के जरिए सेवाकालीन विशेष प्रशिक्षण प्राप्त कर

रहे सरकारी प्राथमिक स्कूलों के 50 में से 30शिक्षकों का चयन उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्शन विधि से किया गया। इसमें 70 प्रतिशत पुरूष एवं 30 प्रतिशत महिला शिक्षक शामिल हैं। प्रतिदर्श के रूप में चयनित 84 फीसदी शिक्षक अप्रशिक्षित थे जबकि मात्र 16 फीसदी शिक्षक प्रशिक्षित ।

शोध उपकरण एवं तकनीक

सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम के मूल्यांकन के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.)द्वारा विकसित मूल्यांकन अनुसूची का उपयोग किया गया। तत्पश्चात् प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण के लिए अनुसूचि के प्रत्येक इकाई की बारम्बारता एवं प्रतिशतता की गणना की गई।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं परिणाम

समावेशी शिक्षा के 'श्रवणबाधिता' विषयक 10 दिवसीय प्रशिक्षण माड्यूल के जरिये प्रशिक्षण पा रहे 93 प्रतिशत प्रतिभागी शिक्षकों की राय में 'संप्रेषण' माड्यूल प्रशिक्षण कार्यक्रम बहुत उपयोगी है जबकि 17 प्रतिशत शिक्षकों ने इसे कुछ हद तक ही उपयोगी माना। किसी प्रशिक्षण कार्यक्रम को सफल बनाने में संसाधन सेवियों (रिसोर्स परसन) की भूमिका महत्वपूर्ण होती है क्योंकि प्रशिक्षण कार्यक्रम की पूरी जिम्मेवारी इन्हीं के कंधों पर होती है। 77 प्रतिशत प्रतिभागी शिक्षकों ने माना कि संसाधन सेवियों ने पाठ्य वस्तु परिचय के क्रम में प्रेरणात्मक वातावरण का सृजन किया था जबकि 6 प्रतिशत प्रतिभागियों की राय में संसाधन सेवी केवल पूछे गए प्रश्नों का जवाब भर दे पा रहे थे। वहीं 20 फीसदी शिक्षकों के मुताबिक प्रशिक्षण के दौरान उन्हें पाठ्यवस्तु पर खुली चर्चा करने का मौका दिया गया। संसाधन सेवियों के पाठ्य प्रस्तुतीकरण की स्पष्टता, निश्चितता एवं उपयोगिता के बारे में 87 प्रतिशत प्रतिभागी शिक्षकों की राय धनात्मक रही। जबकि 13 प्रतिशत प्रतिभागियों ने प्रस्तुतीकरण को ही अव्यवस्थित एवं अस्पष्ट करार दिया।

प्रारंभिक प्रशिक्षण के पश्चात् वापस स्कूल लौटने पर प्रतिभागी शिक्षकों को सैद्धांतिक पहलुओं के प्रायोगिक उपयोग के क्रम में कोई दिक्कतें तो नहीं ही आई उल्टे अधिकांश शिक्षकों (93%) में यह सूझ विकासित हो गई कि स्कूली वातावरण में उन विधियों और रणनितियों का किस कदर अधिकतम उपयोग किया जाए। इन शिक्षकों

(80%) की नजर में समावेशी विधियों, रणनितियों एवं हस्तक्षेपों को स्कूल में प्रभावी तौर पर लागू किया जा सकता है। उनके मुताबिक वास्तविक अधिगम न केवल स्कूल के अंदर होती है बल्कि यह परिवार, समवय समूह एवं समाज में भी काफी हद तक होता है। हालांकि संसाधन सेवियों और प्रतिभागी शिक्षकों के बीच पारस्परिक आकर्षण औसत पाया गया। आधे से अधिक प्रतिभागी शिक्षकों ने माना कि संसाधन सेवियों का सामर्थ्य एवं प्रशिक्षण में सहभागिता औसत स्तर का था।

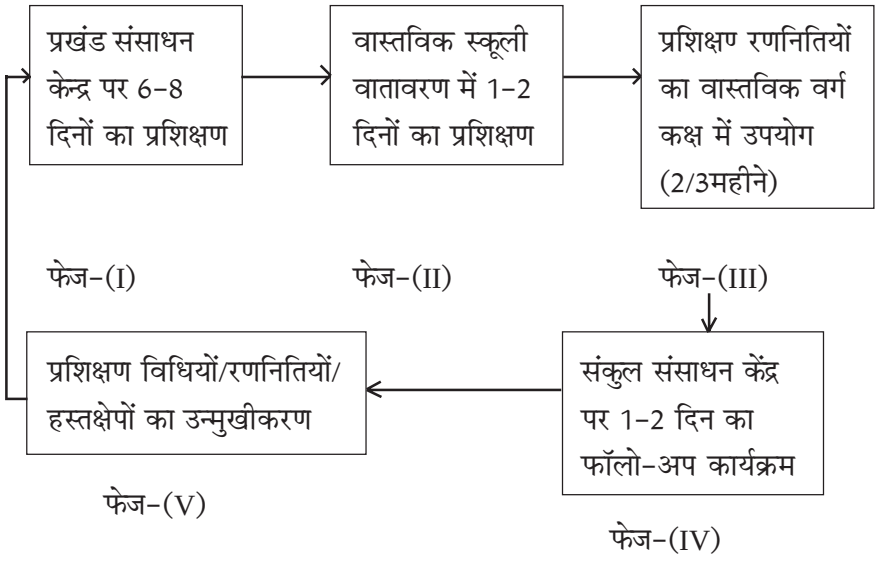

चित्र: सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम मूल्यांकन की पाँच अवस्थायें

द्वितीय चरण के प्रशिक्षण के दौरान प्रतिभागी शिक्षकों को वास्तविक वर्गकक्ष मे समावेशी रणनीतियों एवं हस्तक्षेपों को अमलीजामा पहनाने के क्रम में कई तरह की दिक्कतें आईं। आधे से अधिक प्रतिभागियों ने स्वीकारा कि संसाधनों के अभाव में समावेशी रणनीतियों को स्कूल के वर्गकक्ष में लागू करना आसान नहीं है जबकि 30 फीसदी प्रतिभागियों ने इन रणनीतियों एवं विधियों को ही अनिश्चित एवं अस्पष्ट करार दिया। हालांकि उन्होंने प्रशिक्षण माड्यूल की गुणवत्ता को उत्तम करार दिया।

प्रशिक्षण पश्चात् फॉलो–अप के क्रम में प्रतिभागी शिक्षकों ने माना कि वे बधिर बच्चों के प्रति संवेदनशील हो चुके हैं। वे वर्ग कक्षा में ऐसे बच्चों की पहचान एवं उनका

बेहतर देखभाल कर सकते हैं। आवश्यकता पड़ने पर वे उन्हें श्रवण यंत्रों की सुविधा मुहैया करा सकते हैं। बहिराव का दंश झेल रहे ऐसे बच्चों को समाज की मुख्यधारा में शामिल करा सकते हैं साथ ही ऐसा करने के लिए उनके अभिभावकों को भी प्रोतसाहित कर सकते हैं। लेकिन प्रतिभागी शिक्षकों को इस बात का मलाल था कि उन्हें ऑडियो मीटर कि ट्रेनिंग नहीं दी गई।

निष्कर्ष

समावेशी शिक्षा भले ही भारतीय शिक्षण-अधिगम प्रणाली हाल ही में जुड़ा हो लेकिन इसके अधिकांश प्रशिक्षण माड्यूल गुणवत्तापूर्ण हैं। समावेशी शिक्षा के संप्रेषण माड्यूल के जरिये चलाये जा रहे सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम, मूल्यांकन के अधिकांश पैमाने पर खरा उतरा है। जरूरत है इसके कार्यान्वयन रणनीतियों में सुधार लाने कि ताकि प्रशिक्षण कार्यक्रम को और उम्दा बनाया जा सके।

संदर्भ

कुमार संजीव (2008) : *विशिष्ट शिक्षा,* जानकी प्रकाशन, पटना-4।

कुमार संजीव एवं खगेन्द्र कुमार (2007) : *''इन्क्लूसिव एजुकेशन इन इंडिया''*, इलेक्ट्रॉनिक जर्नल फॉर इन्क्लूसिव एजुकेशन, वाल्यूम-2, एडिशन-3, समर फॉल www.ed.wright.edu वेबसाईट पर उपलबध।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) : एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।

रिपोर्ट ऑफ द कमेटी ऑन स्ट्रीलाइनिंग प्रोसीज्योर एंड प्रैक्टिसेज ऑफ इवैलुएशन इन एलिमेंट्री टीचर एजुकेशन प्रोग्राम (2007), एन.सी.ई.आर.टी, नई दिल्ली।

रिस्पांडिंग टू चिल्ड्रेन विथ स्पेशल नीड्स - '*ए मैनुअल फॉर प्लानिंग एंड इम्प्लिमेंटेशन ऑफ इन्क्लूशिव एजुकेशन इन सर्व शिक्षा अभियान*', डिपार्टमेंट ऑफ एलिमेंट्री एजुकेशन एंड लिटरेसी, मानव संसाधन विकास विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली

समान स्कूल प्रणाली आयोग की रिपोर्ट (2007): बिहार सरकार, पटना।

संप्रेषण (2007) : समावेशी शिक्षा के अन्तर्गत '*श्रवणबाधिता*' विषय आधारित 10 दिवसीय शिक्षक प्रशिक्षण माड्यूल, बिहार शिक्षा परियोजना परिषद्, पटना।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 3, दिसंबर 2008

शोध टिप्पणी/संवाद

माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता एवं व्यवसायिक संतुष्टि

डा. ज्योत्सना सक्सेना और शिरीषपाल सिंह

प्रस्तावना

शिक्षा का वास्तविक आधार-स्तंभ शिक्षक है। योग्य शिक्षक भव्य भवन, सुदंर पुस्तकों और आवश्यक साज-सज्जा के अभाव में भी सफलतापूर्वक शिक्षा प्रदान कर सकता है। हमारे देश में प्राचीनकाल से अब तक ऐसे ही योग्य शिक्षक होते चले आये हैं। अत: शिक्षा व्यवस्था योग्य तथा कुशल शिक्षक के अभाव में व्यर्थ ही सिद्ध होती है। शिक्षक ही बालक के जीवन का निर्माता है। और वहीं उसके मस्तिष्क का प्रशिक्षण कर उसे योग्य बनाकर उन्नति की ओर अग्रसर करता है। इसलिए कहा गया है- *बिना गुरू ज्ञान नहीं जग मांही। ज्ञान समान वस्तु कछु नाहीं।।*

अर्थात गुरू के बिना हम किसी उद्देश्य की प्राप्ति नहीं कर सकते। गुरू के बिना ज्ञान की कल्पना नहीं की जा सकती है। तथा ज्ञान के समान कोई अन्य वस्तु नहीं है।

छात्र को अपने शिक्षक से अनेक गुण प्राप्त होते हैं। अत: जो शिक्षक इस बात को समझकर अपने उत्तम चरित्र तथा आचरण द्वारा बालकों को प्रभावित करते हैं, वे ही शिक्षक होने के योग्य हैं। अनुभ्व यह बताता है कि शिक्षा समाप्त करने के उपरांत छात्र अनेक बातें भूल जाता है पर अपने शिक्षक के उन व्यवहारों को नहीं भूलता जिनसे वह

* रीडर, दयानंद महिला शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय, देहरादून
* प्रवक्ता, शिक्षा संकाय, श्री गुरु रामसराय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, देहरादून

प्रभावित हुआ रहता है। अत: सर्वप्रथम शिक्षक को आत्म-उदाहरण द्वारा बालक को अच्छे व्यवहार की शिक्षा देनी चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षक स्वयं प्रभावी हो। शिक्षक प्रभावशीलता अथवा शिक्षक कुशलता को समझने एवं परिभाषित करने का प्रयास वर्षों से किया जा रहा है। विभिन्न विद्वानों ने शिक्षक प्रभावशीलता की परिभाषा अपने-अपने दृष्टिकोण से दी है। शिक्षक प्रभाव संबंधी यह भिन्नता तथा अस्पष्टता स्वाभाविक है क्योंकि प्रभावशाली शिक्षण नि:संदेह एक सापेक्षिक विषय है। किसी भी व्यक्ति के लिए एक अच्छे या कुशल शिक्षक का विचार उसके पूर्व अनुभव, मूल्य, अभिवृत्ति तथा समाज की परिस्थितियों से प्रभावित होता हैं।

''यदि कुशल अध्यापक उपलब्ध हाते है तो शिक्षा के वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति की संभावना बढ़ जाती है। दूसरी ओर यदि विद्यालय में उत्तम भौतिक व शैक्षिक सुविधाएं, प्रशस्त इमारत,समाज की आवश्यकता अनुसार अभ्यास क्रम, योग्य पाठ्यपुस्तकों के रूप में उपलब्ध हो, परंतु अध्यापक अपने कर्त्तव्य के प्रति उदासीन हों तो सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया प्रभावहीन तथा व्यर्थ हो जाती है।''

व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति रोजगार के माध्यम से करता है। अत: व्यावसायिक जीवन का प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में बहुत महत्व है। व्यक्ति के रहन-सहन का स्तर, कार्य की गति एवं समाज से संबंधित कार्यों पर किसी न किसी रूप में धनोपार्जन के स्रोत एवं प्राप्त धन की मात्रा का प्रभाव पड़ता है। साधारण शब्दों में व्यवसाय से संतुष्टि के अंतर्गत कार्य करने की दशायें, समय तथा कार्यकाल, सुविधाएं तथा दुर्घटनाओं के लिए सुरक्षा, प्रोन्नति के अवसर आदि आते हैं। जब कोई व्यक्ति अपनी अभिवृत्तियों के अनुकूल कार्य कर लेता है तो यह कहा जा सकता है कि वह अपने कार्य के प्रति संतुष्ट है। किसी व्यक्ति की कार्य के प्रति संतुष्टि की सीमा उसकी आकांक्षाओं के अनुकूल कार्य करने की सीमा तक होती है। इस प्रकार किसी भी कार्य के प्रति घनात्मक अभिवृत्ति व्यवसायिक संतुष्टि के समान है। जबकि ऋणात्मक अभिवृत्ति व्यवसायिक असंतुष्टि की ओर जे जाती है।

शिक्षकों की व्यवसाय के प्रति संतुष्टि तथा शिक्षकों की प्रभावशीलता गुणात्मक शिक्षा के प्रमुख पक्ष हैं। क्योंकि असंतुष्ट तथा प्रभावहीन शिक्षक विद्यालय के स्वस्थ वातावरण को समाप्त कर समस्याएं उत्पन्न करते हैं। जबकि एक प्रभावशाली शिक्षक

अपने कार्य के प्रति हमेशा उत्साही रहता है, वह अपने विषय तथा शिक्षण प्रणालियों के संबंध में अपने ज्ञान की वृद्धि करने में सदैव तत्पर रहता है, लेकिन यदि वह अपने व्यवसाय से असंतुष्ट है तो वह उत्साहहीन हो जाता है और वह अपने कार्यों को लगन से नहीं करता तथा छात्रों की उन्नति की ओर भी कोई विशेष ध्यान नहीं देता है।

इस प्रकार यह अध्ययन शिक्षकों की व्यवसाय के प्रति संतुष्टि तथा शिक्षकों की प्रभावशीलता को जानने की दिशा में एक सूक्ष्म कदम है। इसमें माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि तथा प्रभावशीलता का अध्ययन किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. माध्यमिक स्तर के प्रभावी शिक्षण वाले शिक्षकों का पता लगाना।
2. माध्यमिक स्तर के अप्रभावी शिक्षण वाले शिक्षकों का पता लगाना।
3. माध्यमिक स्तर के प्रभावी तथा अप्रभावी शिक्षण वाले शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का पता लगाना।
4. माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की व्यवसायिक संतुष्टि में लिंग तथा विषय वर्गों के आधार पर तुलना करना।

परिकल्पनाएं

1. प्रभावी तथा अप्रभावी शिक्षण वाले शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में कोई सार्थक स्तर का अंतर नहीं है।
2. प्रभावी तथा अप्रभावी शिक्षण वाले महिला व पुरूष शिक्षकों की व्यवसायिक संतुष्टि में कोई सार्थक स्तर का अंतर नहीं है।
3. कला तथा विज्ञान वर्ग के प्रभावी तथा अप्रभावी शिक्षण वाले शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में कोई सार्थक स्तर का अंतर नहीं है।

शोध विधि एवं प्रक्रिया

शोध विधि–अध्ययन के लिए नॉरमेटिव सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। यह विधि बहुत अधिक प्रचलित तथा शिक्षा में व्याापक रूप में प्रयोग की जाने वाली विधि है। यह विधि वर्तमान में क्या स्वरूप है इसकी व्याख्या व विवेचना करती है।

न्यादर्श– इस अध्ययन में 5 माध्यमिक विद्यालयों के 150 शिक्षकों को न्यादर्श हेतु चुना गया जिसमें पुरूष तथा महिला दोनों सम्मलित थे। जिनमें से अन्ततः 50 प्रभावी तथा 50 अप्रभावी शिक्षकों का चयन किया गया।

प्रयुक्त उपकरण– प्रस्तुत अध्ययन में आंकड़ों के संकलन हेतु निम्न उपकरणों का प्रयोग किया गया–

1. शिक्षक व्यवसायिक संतुष्टि मापनी– डा. प्रमोद कुमार एवं डा. डी.एन. मुथा (1996)
2. शिक्षक प्रभावशीलता मापनी– डा. प्रमोद कुमार एवं डा. डी.एन. मुथा (1999) इस प्रश्नावली में कुल 69 प्रश्न है, जिनके द्वारा शिक्षकों की शैक्षणिक, व्यवसायिक, सामाजिक, भावात्मक, नैतिक तथा व्यक्तित्व प्रभावशीलता का मापन किया जाता है।

आंकड़ों का संकलन तथा सांख्यिकीय विश्लेषण

उपरोक्त उपकरणों को न्यायदर्श पर प्रशासित कर आंकड़ों का संकलन किया गया। तत्पश्चात, मध्ययान, मानक विचलन तथा कांतिक अनुपात आदि विधियों का प्रयोग कर सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया।

तालिका–1

प्रभावी तथा अप्रभावी शिक्षण वाले शिक्षकों का मध्यमान तथा प्रमाप विचलन

	संख्या (N)	मध्यमान (M)	प्रमाप विचलन (S.D.)
प्रभावी शिक्षण वाले शिक्षक	50	334.5	10.65
अप्रभावी शिक्षण वाले शिक्षण	50	288.98	19.83

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि प्रभावी शिक्षण वाले शिक्षकों का मध्यमान 334.5 तथा प्रमाण विचलन 10.65 है। इसी प्रकार अप्रभावी शिक्षण वाले शिक्षकों का मध्यमान 288.98 तथा प्रमापविचलन 19.83 है।

तालिका-2

प्रभावी तथा अप्रभावी शिक्षण वाले शिक्षकों की व्यवसायिक संतुष्टि में तुलना

	संख्या (N)	मध्यमान (M)	प्रमाप विचलन (S.D.)	क्रांतिक अनुपात (Critical Ratio)
प्रभावी शिक्षण वाले शिक्षक	50	25.14	4.7	2.62 .05 स्तर पर सार्थक
अप्रभावी शिक्षण वाले शिक्षण	50	21.96	5.51	

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि प्रभावी तथा अप्रभावी शिक्षण वाले शिक्षकों की व्यवसायिक संतुष्टि में सार्थक स्तर का अंतर है। प्रभावी शिक्षण वाले शिक्षक, अप्रभावी शिक्षण वाले शिक्षकों की अपेक्षा व्यवसायिक रूप से अधिक संतुष्ट पाये गये।

अध्ययन का शैक्षिक महत्व एवं सुझाव

शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिए शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षक ही देश के भविष्य के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। परंतु वर्तमान समय में शिक्षक की गरिमा घटती जा रही है, छात्रों की शिक्षकों के प्रति आस्था भी अब वह नहीं रह गयी है जो कभी प्राचीन काल में हुआ करती थी प्रभावशाली शिक्षक अपनी शिक्षण प्रणाली के माध्यम से छात्रों में इच्छित परिवर्तन लाकर उन्हें प्रगति के मार्ग पर अग्रसर करता है। अनेक ऐसे कारक हैं, जो किसी शिक्षक के शिक्षण को प्रभावी बनाने में सहायक होते हैं जैसे विषय का ज्ञान, वाकपटुआ, उन्नत व्यक्तित्व, परिश्रम, व्यवसायिक संतुष्टि आदि। इस प्रकार इन्हीं में से एक कारक व्यवसायिक संतुष्टि है जो शिक्षक की प्रभावशीलता का प्रभावित करता है।

शिक्षक ही शैक्षिक परिवेश में क्रांतिक परिवर्तन लाने में पूर्णत: सक्षम है और यह तभी संभव है जबकि वह अपने व्यवसाय से पूर्णत:संतुष्ट हो। प्रत्येक शिक्षक की व्यवसायिक संतुष्टि का उसकी कुशलता पर प्रभाव पड़ता है। यदि शिक्षक अपने व्यवसाय से संतुष्ट है तो उसका मानसिक स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा।

तालिका-3

प्रभावी एवं अप्रभावी शिक्षण वाले शिक्षकों की व्यवसायिक संतुष्टि का विभिन्न आधारों पर तुलनात्मक अध्ययन

शिक्षकों की व्यवसायिक संतुष्टि				
	संख्या (N)	**मध्यमान (M)**	**प्रमाप विचलन (S.D.)**	**क्रांतिक अनुपात (Critical Ratio)**
प्रभावी शिक्षण वाले पुरुष शिक्षक	25	24.64	5.52	1.49 NS *सार्थक
अप्रभावी शिक्षण वाली पुरुष शिक्षक	28	22.32	5.43	स्तर का अंतर नहीं
प्रभावी शिक्षण वाली महिला शिक्षक	25	25.64	3.77	4.91 S
अप्रभावी शिक्षण वाली महिला शिक्षक	22	21.81	5.803	*सार्थक अंतर
प्रभावी शिक्षण वाले पुरुष शिक्षक	25	24.64	5.52	0.74 NS *सार्थक
प्रभावी शिक्षण वाली महिला शिक्षक	25	25.64	3.77	अंतर नहीं
अप्रभावी शिक्षण वाले पुरुष शिक्षक	28	22.32	5.43	0.32 NS *सार्थक
अप्रभावी शिक्षण वाली महिला शिक्षक	22	21.81	5.803	अंतर नहीं
कला वर्ग के प्रभावी शिक्षण वाले शिक्षक	29	24.72	5.51	1.0 NS
विज्ञान वर्ग के प्रभावी शिक्षण वाले शिक्षक	21	26	4.07	*सार्थक अंतर नहीं
कला वर्ग के अप्रभावी शिक्षण वाले शिक्षक	26	23.15	4.92	1.62 NS
विज्ञान वर्ग के अप्रभावी शिक्षण वाले शिक्षक	24	20.66	5.9	*सार्थक अंतर नहीं
कला वर्ग के प्रभावी शिक्षण वाले शिक्षक	29	24.72	5.15	1.16 NS
कला वर्ग के अप्रभावी शिक्षण वाले शिक्षक	26	23.15	4.92	*सार्थक अंतर नहीं
विज्ञान वर्ग के प्रभावी शिक्षण वाले शिक्षक	21	26	4.07	3.60 S
विज्ञान वर्ग के अप्रभावी शिक्षण वाले शिक्षक	24	20.66	5.90	*सार्थक अंतर नहीं

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि केवल प्रभावी तथा अप्रभावी शिक्षण वाले महिला तथा विज्ञान वर्ग के शिक्षकों की व्यवसायिक संतुष्टि में ही सार्थक स्तर का अंतर पाया गया। अन्य आधारों पर व्यवसायिक संतुष्टि में अंतर सार्थक नहीं था।

शिक्षकों को व्यवसाय के प्रति संतुष्टि तथा शिक्षकों की प्रभावशीलता शिक्षा को गुणात्मक बनाने में प्रमुख पक्ष है। क्योंकि संतुष्ट तथा प्रभावी शिक्षक ही विद्यालय के स्वस्थ वातावरण को बनाये रख सकते हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि उन्हें अपने कार्य को करने के लिए पूर्ण स्वतंत्रता दी जानी चाहिए जिससे वे अपने व्यवसाय के प्रति रूचि ले सके। इस प्रकार शिक्षक छात्रों के लिए सूचना का स्रोत, प्रेरणादाता, परामर्शदाता तथा मार्गदर्शक होता है। शिक्षक को अपने कार्य से, कार्य करने की दशाओं, साथी शिक्षकों तथा अपने अधिकारियों से पूर्णत: संतुष्ट होना चाहिए,जिससे शिक्षक पूर्ण उत्साह के साथ अपने शिक्षण को प्रभावी बना सके। साथ ही वह अन्य किसी व्यवस्था में जाने के लिए न सोचे और अपने व्यवसाय पर अत्यंत गर्व कर सके। प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्ष से पता चलता है कि व्यवसायिक संतुष्टि का प्रभाव शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता पर पड़ता है। अत: शिक्षकों की व्यवसायिक संतुष्टि कम होने के जो कारण सामने आये हैं उनमें सुधार हेतु सुझाव इस प्रकार हैं-

- शिक्षकों को उनके कार्य के अनुरूप उचित वेतन मिलना चाहिए।
- शिक्षकों को पदोन्नति के अवसर समय-समय पर दिये जाने चाहिए।
- शिक्षकों को संस्था की नितियों तथा योजनाओं के बारे में परामर्श देने के लिए स्वतंत्रता दी जानी चाहिए।
- शिक्षकों की शैक्षणिक/व्यवसायिक योग्यता बढ़ाने हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाने चाहिए।
- शिक्षकों द्वारा अच्छा कार्य करने पर उन्हें पुरस्कृत किया जाना चाहिए।
- शिक्षकों की शिक्षण से संबंधित समस्याओं का शीघ्र समाधान होना चाहिए।

संदर्भ

बेस्ट, जे. डब्ल्यू (1978): *'रिसर्च इन एजुकेशन'* प्रेन्टिस ऑफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली

करलिंगर, एफ.एन. (1964): *'फाउण्डेशन ऑफ बिहेवियर रिसर्च',* हाल्ट, रिनहार्ट एंड विसटन न्यूयार्क।

कौल, लोकेश (1984): *'मैथेडोलॉजी ऑफ एजुकेशनल रिसर्च,* विकास पब्लिसिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली

पंडा, बी.एन. तिवारी ए.डी. (1997): *'शिक्षक शिक्षा'* ए.पी.एच. पब्लिशिंग कार्पोरेशन, नई दिल्ली

वर्मा, रोमेश (1998): *साइकोलॉजी ऑफ टीचर्स,* प्रथम संस्करण, अनमोल पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली

सिंह, मयाशंकर (2004): *'अध्यापक शिक्षा–गुणात्मक विकास',* अध्ययन पब्लिशर्स एंड डिस्टीब्यूटर्स, नई दिल्ली

श्रीवास्तव एस.एस. (2006): *'शिक्षक सशक्तिकरण'* भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका लखनऊ

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 3, दिसम्बर 2008

शोध टिप्पणी/संवाद

उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा का उनके समायोजन तथा शैक्षिक उपलब्धि

महेश कुमार मुछाल * एवं सुभाष कुमार **

प्रस्तावना

मनुष्य को वातावरण में सामन्जस्यपूर्वक समायोजन करने, विकास करने, सम्मानपूर्वक जीविकोपार्जन करने तथा जीवन की सुरक्षा एवं संरक्षा करने के लिए भोजन, वस्त्र एवं आवास जैसी मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करना आवश्यक है। भोजन, वस्त्र एवं आवास से मनुष्य को शारीरिक सुरक्षा एवं विकास तो संभव है परन्तु मनुष्य के समुचित जीवन संचालन में शारीरिक विकास के साथ-साथ मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक एवं नैतिक विकास आवश्यक है जो केवल शिक्षा के माध्यम से सम्भव है। **डा0 एस0 राधाकृष्णन** ने शिक्षा के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहा था कि ''शिक्षा केवल जीविकोपार्जन का साधन नहीं है, न यह विचारों की समर्थन स्थली है और न ही नागरिकता की पाठशाला है। यह आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश की दीक्षा है, सत्य की खोज में लगी मानव आत्मा का प्रशिक्षण है।'' इस प्रकार शिक्षा मानव के सर्वांगीण विकास का आधार है। निश्चित रूप से शिक्षा को जीवन के पुराने प्रतिमानों को समय की नई मांगों के अनुकूल बनाने या सामन्जस्य बैठाने के रूप में देखा जा सकता है। समाज में व्याप्त अंधविश्वासों और कुरुतियों को शिक्षा के माध्यम से समाप्त किया जा सकता है तथा समाज में नव चेतना का संचार कर विकास के मानवीय मूल्यों को स्थापित किया जा सकता है।

---

* रीडर, अध्यापक प्रशिक्षण विभाग, दिगम्बर जैन महाविद्यालय, बड़ौत
** शोध-छात्र, अध्यापक प्रशिक्षण विभाग, दिगम्बर जैन महाविद्यालय, बड़ौत

इसलिए शिक्षा को राष्ट्र की प्राण वायु कहा गया है। यही शिक्षा समाज की प्रेरणा है, उसकी ऊर्जा है। इसी आधार पर राष्ट्र का भविष्य उसके द्वारा प्राप्त किए गए शैक्षिक स्तर पर निर्भर करता है। शैक्षिक स्तर का सम्बन्ध इससे है कि हमारे विद्यालयों में क्या और कैसे पढ़ाया जा रहा है। हमारी वर्तमान पाठ्यचर्चा में बहुत सी कमियाँ हैं इसलिए आज भी विद्यालयी शिक्षा में 'अपव्यय' और 'अवरोधन' की समस्या व्याप्त है। इस समस्या के प्रति कई कारण जिम्मेदार हैं, जैसे – पाठ्यचर्चा का अरुचिकर व एकमार्गीय होना, पाठ्यचर्चा का पूर्णत: सैद्धान्तिक होना एवं करके सीखने हेतु गतिविधियों का अल्प होना आदि कारण मुख्य हैं। इसके साथ ही विद्यालयों में शिक्षकों का अभाव तथा शिक्षा में प्रेरणा का अभाव है। इसलिए विद्यालयी स्तर पर अधिकांश विद्यार्थियों को असफलता प्राप्त होती है तथा उनकी शैक्षिक स्थिति भी निम्न स्तर की होती है। अधिकांश विद्यार्थी विद्यालयी स्तर पर समायोजन नहीं कर पाते हैं, परिणामस्वरूप विद्यालयी स्तर पर शैक्षिक विफलता प्राप्त हो रही है। यह प्रश्न स्पष्ट रूप से अभिभावकों, शिक्षकों तथा राष्ट्रीय नियोजनकर्ताओं को आघात पहुँचा रहा है कि योग्य तथा क्षमतावान विद्यार्थी भी परीक्षाओं में अपने शैक्षिक प्रयासों में क्यों असफल हो जाते हैं? शैक्षिक विफलता की अपेक्षा निम्न शैक्षिक उपलब्धि ने एक विकट समस्या उत्पन्न कर रखी है, जिससे मानव संसाधनों के अपव्यय के परिमाण का ज्ञान होता है।

शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर विद्यार्थियों की निम्न शैक्षिक उपलब्धि और विफलता का जटिल घटनाक्रम भारत जैसे विकासशील देशों के साथ ही सम्पूर्ण विश्व के शिक्षाविदों, शिक्षकों, निर्देशन प्रदाताओं एवं परामर्शदाताओं तथा शैक्षिक नियोजनकर्ताओं के लिए गम्भीर चिन्ता का कारण बना हुआ है। भारत में शिक्षा प्रक्रिया के निकटवर्ती अध्ययन एवं विश्लेषण से प्रदर्शित होता है कि शिक्षा में 'अपव्यय' तथा 'अवरोधन' की समस्या प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक आदि सभी स्तरों पर स्थायी रूप से विद्यमान है। व्यापक स्तर पर करायी जाने वाली कक्षा X की सार्वजनिक परीक्षा में अधिकांश विद्यार्थियों को विफलता प्राप्त होती है अथवा उनकी शैक्षिक उपलब्धि निम्न स्तर की होती है, जिससे ज्ञात होता है कि इस स्तर पर शिक्षा निम्न शैक्षिक उपलब्धि तथा विफलता की समस्याओं से जकड़ी हुई है। अत: निम्न शैक्षिक उपलब्धि तथा असफलता की जांच पड़ताल करना अनिवार्य हो जाता है।

सन्दर्भ साहित्य की समीक्षा (Review of Related Literature)

संदर्भ साहित्य की समीक्षा में विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा, उनके समायोजन तथा शैक्षिक उपलब्धि से सम्बन्धित प्रमुख अध्ययन इस प्रकार हैं –

विल्सन, एफ.एच. (1976) के द्वारा जूनियर हाईस्कूल के विद्यार्थियों पर अध्ययन किया गया तथा उन्होंने पाया कि विद्यार्थियों के अध्ययन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण एवं उनकी उच्च शैक्षिक उपलब्धि उनके माता-पिता की उनके शैक्षिक मामलों या कार्यों में रूचि से जुडी हुई है। **गरीगोरोय, एस.एम. (1984)** के द्वारा 6 और 7 वर्ष के बालकों पर उनके समायोजन के सम्बन्ध में अध्ययन किया गया। उनके द्वारा किये गये अध्ययन में माता-पिता की विशेषताओं तथा व्यवहार का प्रभाव बालकों के समायोजन पर पाया गया।

सक्सेना, वन्दना (1988) के द्वारा हाईस्कूल के विद्यार्थियों पर उनके समायोजन, अभिप्रेरणा, उत्तेजना तथा शैक्षिक उपलब्धि पर पारिवारिक सम्बन्धों के प्रभाव का अध्ययन किया गया। विभिन्न प्रकार के पारिवारिक सम्बन्ध रखने वाले विद्यार्थियों के समायोजन, अभिप्रेरणा एवं शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर पाया गया। **गर्ग, चित्रा (1992)** के द्वारा हाईस्कूल के अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों के पारिवारिक सम्बन्धों, सामाजिक, आर्थिक स्थिति, बुद्धि तथा समायोजन का अध्ययन किया गया। उनके द्वारा किए गए अध्ययन में पारिवारिक सम्बन्धों, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, बुद्धि तथा विद्यार्थियों के समायोजन के मध्य सम्बन्ध को व्यक्त किया गया।

अग्रवाल, रेखा एवं कपूर माला (1998) के द्वारा प्राथमिक स्तर पर बालकों की शैक्षिक क्रियाओं में माता-पिता की सहभागिता का अध्ययन किया गया तथा उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि माता-पिता द्वारा प्रदान किया गया निर्देशन व पथ प्रदर्शन बालकों के अधिक अच्छे शैक्षिक दृष्टिकोण एवं शैक्षिक उपलब्धि में योगदान करता है।

अग्रवाल, कुसुम (1999) के द्वारा शैक्षिक रूप से असफल या अनुत्तीर्ण किशोरों पर अध्ययन किया गया। अध्ययन में पाया गया कि असफल एवं उपेक्षित विद्यार्थियों की तुलना में माता-पिता का सहयोग प्राप्त करने वाले सफल विद्यार्थियों का समायोजन तथा शैक्षिक उपलब्धि का स्तर उच्च था। इसके अनुसार अभिभाकों का व्यवहार विद्यार्थियों के समायोजन तथा शैक्षिक उपलब्धि को सार्थक रूप से प्रभावित

करता है। **कुमार, सुभाष (2003)** के द्वारा जूनियर हाईस्कूल के विद्यार्थियों पर अध्ययन किया गया। अध्ययन में पाया गया कि माता-पिता की विद्यार्थियों की शैक्षिक क्रियाओं में सहभागिता का प्रभाव विद्यार्थियों के समायोजन तथा शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ता है।

ज्ञानानी एवं देवगन (2003) ने हाईस्कूल के विद्यार्थियों पर माता-पिता द्वारा दिए गए प्रोत्साहन का अध्ययन किया जिसमें विद्यार्थियों को मिलने वाली अभिप्रेरणा तथा उनकी शैक्षिक उपलब्धि में सकारात्मक सहसम्बन्ध पाया गया। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर अभिभावकों द्वारा दिये जाने वाले प्रोत्साहन अथवा अभिप्रेरणा का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

त्रिपाठी कुमुद (2004) ने माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की उपलब्धि अभिप्रेरणा का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव पर अध्ययन में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर लिंग, परिवेश व उपलब्धि अंत:क्रियात्मक, तुलनात्मक उद्देश्य पर कार्य किया। इसमें पाया कि विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर उपलब्धि प्रेरणा का अधिक प्रभाव पड़ता है, जबकि लिंग व परिवेश का प्रभाव नहीं पड़ता है।

विद्या प्रतिभा (2006) ने बालक-बालिकाओं के विद्यालयी समायोजन के अध्ययन में पाया कि विद्यार्थियों में तनाव का 40 प्रतिशत कारण विद्यालय है। बालिकाएँ भारतीय परिप्रेक्ष्य में में संकीर्ण होती हैं इसलिए वे गुरुजनों एवं सहपाठियों से तुरन्त घुल-मिल नहीं पाती हैं। साथ ही पाठ्य सहगामी क्रियाओं में भी कम ही भाग ले पाते हैं जबकि बालकों के साथ ऐसा नहीं है। विद्यालयी गतिविधियों में बढ़-चढ़कर भाग लेते हैं।

पंवार एवं उनियाल (2008) ने उच्च प्राथमिक स्तर के बालक-बालिकाओं के समायोजन के तुलनात्मक अध्ययन में पाया कि बालक-बालिकाओं के पारिवारिक, सामाजिक, स्वास्थ्य एवं संवेगात्मक समायोजन के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं है। जबकि विद्यालयी समायोजन में सार्थक अन्तर है।

अध्ययन का औचित्य

अभिप्रेरणा, समायोजन एवं शैक्षिक उपलब्धि से सम्बन्धित प्रमुख अध्ययन इस प्रकार हैं - विल्सन एफ.एच. (1976) ने जूनियर हाईस्कूल विद्यार्थियों की उपलब्धि तथा

गरीगोरोय एस.एम. (1984) ने प्राथमिक स्तर पर बालकों के समायोजन पर अध्ययन किया। हाईस्कूल स्तर पर सक्सेना वंदना (1988) ने समायोजन, उत्तेजना तथा शैक्षिक उपलब्धि पर पारिवारिक सम्बन्धों पर अध्ययन किया तथा गर्ग चित्रा (1992) ने पारिवारिक सम्बन्ध, सामाजिक-आर्थिक स्थिति एवं बुद्धि एवं समायोजन के मध्य सम्बन्ध पर अध्ययन किया।

अग्रवाल कुसुम (1999) ने असफल किशोरों के समायोजन एवं शैक्षिक उपलब्धि पर अध्ययन किया। कुमार सुभाष (2003), ज्ञानानी एवं देवगन (2003), विद्या प्रतिभा (2006), तथा पंवार एवं उनियाल (2008) आदि ने प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर पर बालक-बालिकाओं, असफल व उपेक्षित बालकों का परिवार में समायोजन, जूनियर हाईस्कूल पर माता-पिता द्वारा दी गई अभिप्रेरणा का उपलब्धि पर प्रभाव एवं विद्यालयी स्तर पर विद्यार्थियों के समायोजन पर अध्ययन किया है। इस आधार पर निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि अब तक जो अध्ययन हुए प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, जूनियर हाईस्कूल व हाईस्कूल स्तर पर हुए हैं लेकिन अभी तक उच्चतर माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक अभिप्रेरणा, समायोजन एवं शैक्षिक उपलब्धि के सम्बन्ध में अध्ययन नहीं हुआ इसलिए प्रस्तुत अध्ययन की आवश्यकता प्रतिपादित होती है।

अध्ययन का शीर्षक

''उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा का उनके समायोजन तथा शैक्षिक उपलब्धि के सम्बन्ध में अध्ययन।''

उद्देश्य :

1. उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा का अध्ययन करना।
2. उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों के समायोजन एवं शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन करना।
3. उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा तथा समायोजन के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।
4. उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा तथा शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।

परिकल्पनायें

1. उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा तथा उनके समायोजन के मध्य सार्थक सम्बन्ध नहीं है।
2. उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा तथा उनकी शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक सम्बन्ध नहीं है।

प्रतिदर्श

प्रस्तुत अध्ययन के लिए माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, उत्तर प्रदेश के उच्चतर माध्यमिक स्तर कक्षा XI के 60 विद्यार्थियों को लिया गया। प्रतिदर्श का चयन यादृच्छिक प्रतिचयन के आधार पर किया गया।

उपकरण

शैक्षिक अभिप्रेरणा के अध्ययन हेतु टी.आर. शर्मा द्वारा निर्मित 'एकेडमिक एचीवमेंट मोटीवेशन टेस्ट' का प्रयोग किया गया। समायोजन के अध्ययन हेतु ए.के.पी. सिन्हा एवं आर.पी. सिंह द्वारा निर्मित 'एडजस्टमेंट इन्वेंटरी फॉर स्कूल स्टूडेंट' का प्रयोग किया गया। शैक्षिक उपलब्धि के रूप में विद्यार्थियों के कक्षा X के प्राप्ताकों को लिया गया।

प्रदत्त विश्लेषण

संग्रहीत प्रदत्तों से निष्कर्ष निकालने हेतु कार्ल पीयरसन द्वारा प्रतिपादित 'गुणनफल आघूर्ण विधि' से चरों के मध्य सह-सम्बन्ध की गणना की गयी।

परिणाम एवं विवेचना

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा का उनके समायोजन तथा शैक्षिक उपलब्धि के साथ सह-सम्बन्ध ज्ञात करना था। अध्ययन की सुविधा के लिए शैक्षिक अभिप्रेरणा के फलांकों के आधार पर विद्यार्थियों को (i) निम्न शैक्षिक अभिप्रेरणा समूह तथा (ii) उच्च शैक्षिक अभिप्रेरणा समूह में रखा गया।

तालिका 1.1

निम्न शैक्षिक अभिप्रेरणा समूह के विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा (X) एवं समायोजन (Y) के मध्य सह-सम्बन्ध गुणांक की विश्लेषण तालिका

फलांकों का योग (Sum of Scores)		मध्यमान (Mean)		वर्गों का योग (Sum of Squares)		गुणनफल का का योग (Sum of Multiplication)	सह-समबन्ध गुणांक (Coefficient of Correlation)
(ΣX)	(ΣY)	(Mx)	(My)	(Σx^2)	(Σy^2)	(Σxy)	(Υ)
814.00	401.00	27.13	13.36	177.26	290.68	-174.45	-0.76

तालिका 1.1 से ज्ञात होता है कि शैक्षिक अभिप्रेरणा के फलांकों तथा समायोजन के फलांकों के मध्य सह-सम्बन्ध गुणांक (r) का मान -0.76 है। तालिका 1.1 शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं समायोजन के मध्य उच्च सह-सम्बन्ध को प्रदर्शित करती है।

तालिका 1.2

उच्च शैक्षिक अभिप्रेरणा समूह के विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा (X) एवं समायोजन (Y) के मध्य सह-सम्बन्ध गुणांक की विश्लेषण तालिका

फलांकों का योग (Sum of Scores)		मध्यमान (Mean)		वर्गों का योग (Sum of Squares)		गुणनफल का का योग (Sum of Multiplication)	सह-समबन्ध गुणांक (Coefficient of Correlation)
(ΣX)	(ΣY)	(Mx)	(My)	(Σx^2)	(Σy^2)	(Σxy)	(Υ)
992.00	230.00	33.06	07.66	83.76	280.50	-86.41	-0.56

तालिका 1.2 से ज्ञात होता है कि शैक्षिक अभिप्रेरणा के फलांकों तथा समायोजन के फलांकों के मध्य सह-सम्बन्ध गुणांक (r) का मान -0.56 है। तालिका 1.2 शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं समायोजन के मध्य सामान्य सह-सम्बन्ध को प्रदर्शित करती है।

विवेचना

तालिका 1.1 तथा 1.2 शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं समायोजन के फलांकों के मध्य उच्च तथा सामान्य ऋणात्मक सह-सम्बन्ध को प्रदर्शित करती हैं अर्थात् शैक्षिक अभिप्रेरणा के फलांकों में वृद्धि होती है तो समायोजन के फलांकों में कमी होती है। समायोजन अनुसूची की अंकन विधि के अनुसार फलांकों की कम मात्रा अधिक समायोजन को प्रदर्शित करती है। अत: इसका अर्थ है कि अगर शैक्षिक अभिप्रेरणा अधिक है तो विद्यार्थी का समायोजन भी अधिक होगा और अगर शैक्षिक अभिप्रेरणा कम तो विद्यार्थी का समायोजन भी कम होगा।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा और समायोजन के मध्य सार्थक सम्बन्ध है।

तालिका 2.1

निम्न शैक्षिक अभिप्रेरणा समूह के विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा (X) एवं शैक्षिक उपलब्धि (Y) के मध्य सह-सम्बन्ध गुणांक की विश्लेषण तालिका

फलांकों का योग (Sum of Scores)		मध्यमान (Mean)		वर्गों का योग (Sum of Squares)		गुणनफल का का योग (Sum of Multiplication)	सह-समबन्ध गुणांक (Coefficient of Correlation)
(ΣX)	(ΣY)	(Mx)	(My)	(Σx^2)	(Σy^2)	(Σxy)	(Υ)
814.00	10507.00	27.13	350.23	177.26	12545.28	1167.86	0.78

तालिका 2.1 से ज्ञात होता है कि शैक्षिक अभिप्रेरणा के फलांकों तथा शैक्षिक उपलब्धि के फलांकों के मध्य सह-सम्बन्ध गुणांक (r) का मान 0.78 है। तालिका 2.1 शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य उच्च सह सम्बन्ध को प्रदर्शित करती है।

तालिका 2.2

उच्च शैक्षिक अभिप्रेरणा समूह के विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा (X) एवं शैक्षिक उपलब्धि (Y) के मध्य सह-सम्बन्ध गुणांक की विश्लेषण तालिका

फलांकों का योग (Sum of Scores)		मध्यमान (Mean)		वर्गों का योग (Sum of Squares)		गुणनफल का का योग (Sum of Multiplication)	सह-समबन्ध गुणांक (Coefficient of Correlation)
(ΣX)	(ΣY)	(Mx)	(My)	(Σx^2)	(Σy^2)	(Σxy)	(Υ)
992.00	12211.00	33.06	407.03	83.76	30446.94	1345.91	0.84

तालिका 2.2 से ज्ञात होता है कि शैक्षिक अभिप्रेरणा के फलांकों तथा शैक्षिक उपलब्धि के फलांकों के मध्य सह समबन्ध गुणांक (r) का मान 0.84 है। तालिका 2.2 शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य अति उच्च सह सम्बन्ध को प्रदर्शित करती है।

विवेचना

तालिका 2.1 तथा 2.2 शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं शैक्षिक उपलब्धि के फलांकों के मध्य उच्च तथा अति उच्च धनात्मक सह-सम्बन्ध को प्रदर्शित करती है, अर्थात् शैक्षिक अभिप्रेरणा के फलांकों में वृद्धि होती है तो शैक्षिक उपलब्धि के फलांकों में भी वृद्धि होती है। अत: इसका अर्थ है कि अगर शैक्षिक अभिप्रेरणा अधिक है तो विद्यार्थी की शैक्षिक उपलब्धि भी अधिक होगी और अगर शैक्षिक अभिप्रेरणा कम है तो विद्यार्थी की शैक्षिक उपलब्धि भी कम होगी।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा और शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक सम्बन्ध है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

उपरोक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि उच्चतर माधयमिक विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा, उनके समायोजन तथा शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक

सह सम्बन्ध होता है। विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा, उनके समायोजन तथा शैक्षिक उपलब्धि को सार्थक रूप से प्रभावित करती है। जब विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा उच्च स्तर की होती है तो उनके समायोजन एवं शैक्षिक उपलब्धि का स्तर भी उच्च होता है।

अध्ययन के परिणामों के आधार पर कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों को मिलने वाली शैक्षिक अभिप्रेरणा उनके विद्यालय में अच्छे समायोजन तथा उच्च शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त करने में सहायक होती है। अत: अध्यापकों, अभिभावकों, परामर्शदाताओं एवं निर्देशन कार्यकर्ताओं से अपेक्षा की जाती है कि वे विद्यार्थियों की शैक्षिक समस्याओं के समाधान में उनकी सहायता करें तथा विद्यार्थियों को इस प्रकार अभिप्रेरित करें कि वे विद्यालय एवं आसपास के वातावरण के साथ उपयुक्त समायोजन करते हुए उच्च शैक्षिक उपलब्धि को प्राप्त करें। शैक्षिक अभिप्रेरणा द्वारा विद्यार्थियों की असमायोजन, असफलता और निम्न शैक्षिक उपलब्धि की समस्या को सुलझाया जा सकता है तथा शिक्षा में 'अपव्यय' एवं 'अवरोधन' की समस्या को नियंत्रित किया जा सकता है।

सन्दर्भ

बुच एम.बी. (1978-83): *'थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन'*, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।

बुच एम.बी. (1988-92): *'फिफ्थ सर्वे ऑफ रिचर्स इन एजुकेशन'*, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।

गर्ग चित्रा (1992), *''ए स्टडी ऑफ फैमिली रिलेशन, सोशियो-इकॉनामिक स्टेट्स, इंटेलीजेंस एण्ड एडजस्टमेंट ऑफ फेल्ड हाईस्कूल स्टूडेंट्स''*, फिफ्थ सर्वे ऑफ एजुकेशनल रिसर्च, वाल्यूम-1, 728-730।

अग्रवाल रेखा एवं कपूर माला (1998), *''पेरेन्ट्स पार्टीसिपेशन इन चिल्ड्रन एकेडमिक एक्टीविटीज एट द प्राइमरी लेवल''*, जनरल ऑफ इंडियन एजुकेशन, वाल्यूम-XXIII(4) 61.68।

अग्रवाल कुसुम (1999), *''ए स्टडी ऑफ पेरेन्टल एटीट्यूड्स एण्ड सोशियो-इकॉनामिक बैकग्राउंड ऑफ द एजुकेशनली फेल्ड एडोलसेंट्स''*, इंडियन जनरल ऑफ एजुकेशन रिसर्च, वाल्यूम-18(1), 17-22।

कुमार सुभाष (2003): *''ए स्टडी ऑफ रिलेशनशिप ऑफ पेरेंट्स पार्टीसिपेशन विद स्टूडेंट्स एचीवमेंट एण्ड एडजस्टमेंट''*, डिसर्टेशन डिपार्टमेंट ऑफ एजुकेशन, सी.सी.एस. यूनिवर्सिटी, मेरठ।

त्रिपाठी कुमुद (2004): *''माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की उपलब्धि प्रेरणा का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव : एक अध्ययन''*, भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, वर्ष 23, अंक 1, जनवरी–जून 2004।

श्री विद्या प्रतिभा सी.एस. (2006): *''रोल ऑफ पेरेंट्स इन हेल्पिंग एडोलसेंट्स विद स्ट्रेस''*, एक्सपैरिमेंट इन एजुकेशन, वाल्यूम XXXIV, नं. 8, पेज 165।

प्रकाशतीर्थ एवं सिंह संतोष कुमार (2007), *''प्राथमिक शिक्षा : बुनियादी आवश्यकता''*, कुरुक्षेत्र, वर्ष 53, अंक 11, सितम्बर 2007।

पंवार एस. एवं उनियाल एन.पी. (2008), *''उच्च प्राथमिक स्तर के बालक–बालिकाओं के समायोजन एवं माता–पिता का उनके प्रति व्यवहार का एक तुलनात्मक अध्ययन''*, प्राथमिक शिक्षक, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, वर्ष 33, अंक 1, जनवरी 2008

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 3, दिसम्बर 2008

शोध टिप्पणी/संवाद

पूर्वांचल में बालिका शिक्षा और बालिका विद्यालयों का विस्तार

गरिमा सिंह*

आज स्त्री शिक्षा को जिस परिप्रेक्ष्य में देखा जा रहा है उससे इसकी महत्ता स्वयं स्थापित हो रही है। सरकारी और गैर-सरकारी प्रचार माध्यम,भिन्न-भिन्न आन्दोलन स्वयं स्त्रियों में अपनी स्थिति के संदर्भ में असंतोष और इससे जुड़ी राजनीति ने स्त्री-विकास को जनतान्त्रिक मूल्यों से जोड़ दिया है। स्त्रियों की मानव पूंजी के रूप में अर्थव्यवस्था में भागीदारी, तथा उनका एक स्वतंत्र चेतना के रूप में विकास दोनों आयामों का समान रूप से महत्व स्थापित हुआ है।

इन सबके बावजूद पूर्वांचल में स्त्रियों में साक्षरता प्रतिशत पुरूषों की तुलना में लगभग एक तिहाई है। वाराणसी को छोड़कर और जिलों में यह एक तिहाई से भी कम है। (सांख्यिकी पत्रिका) कक्षा -6 ये 8 तक स्कूल छोड़ने वालों का प्रतिशत छात्रों में 75.47 अनुसूचित जाति/जनजाति के छात्रों में 77.89 तथा छात्राओं में 85.75 तथा अनुसूचित/जनजाति के छात्रों में 85.10 है। इसी प्रकार कक्षा-8 तथा 9 तक पढ़ाई छोड़ने वालों में कुल छात्रों का प्रतिशत 3.24 अनु. जाति/जनजाति के छात्रों में 4.35% छात्राओं में 61.36% तथा अनु. जाति/जनजाति के छात्राओं में 52.75% है। (सांख्यिकी पत्रिका) इस आधार पर हम कह सकते हैं कि जूनियर हाई स्कूल स्तर पर ही स्कूल छोड़ने वालों की संख्या सबसे अधिक है। दारूण सत्य यह है कि बालिकाओं का स्कूल छोड़ने का कुल प्रतिशत अनु. जाति/के प्रतिशत से भी अधिक है।

* रीडर, शिक्षा संकाय, उदय प्रताप स्वायत्तशासी महाविद्यालय, वाराणसी

बालिका शिक्षा की इस पिछड़ी स्थिति के लिए अनेक कारण उत्तरदायी हैं। जिन पर विषद शोध हो चुका है अथवा हो रहा है। सामान्यता विचारकों में कारण को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक तथा मनोवैज्ञानिक घटकों में विभाजित किया है।

आर्थिक कारणों में,कम आय तथा गरीबी, क्षेत्र की आर्थिक विपन्नता, आर्थिक लाभ प्राप्त होने की आशा न होना, शिक्षा से रोजगार का संबंध न होना, उत्पादन व्यवस्था में मुख्य रूप से कृषि से स्त्रियों का सीधा संबंध न होना आदि कारण प्रमुख हैं। सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारणों में बालक–बालिकाओं में भेद करना, बालिकाओं को घरेलू कार्यों से जोड़ना, जल्दी विवाह तथा विवाह की अनिवार्यता, सामाजिक सुरक्षा, जातिगत भेद, पर्दाप्रथा तथा माता–पिता का स्वयं अशिक्षित होना इत्यादि कारण मुख्य माने जाते हैं। शैक्षिक कारणों में, स्कूलों की संख्या, उनका भौगोलिक वितरण, स्कूल का समय, यातायात तथा संचार की सुविधओं का अभाव, सहशिक्षा, भाषा तथा पाठ्यक्रम की अनुपयोगिता इत्यादि मुख्य है। इसी प्रकार मनोवैज्ञानिक कारणों में लिंग भेद, बौद्धिक स्तर में अंतर, भय, अपने को कमजोर समझने की प्रवृत्ति इत्यादि गिनाये जा सकते हैं।

वाराणसी, मिर्जापुर, सोनभद्र, गाजीपुर, भदोही, चन्दौली, बलिया, जौनपुर जिले के आधार पर यदि पूरे पूर्वांचल के संबंध में अनुमान लगाया जाए तो इन प्रमुख कारणों की तुलनात्मक महत्ता का ज्ञान हो जाता है। इस संदर्भ में उपर्युक्त जिलों में विद्यार्थियों तथा अभिभावकों से निश्चित प्रश्नावली के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आज समस्या के स्वरूप में सुधारात्मक बदलाव आया है। जैसे पर्दाप्रथा, विवाह, माता–पिता का स्वयं अशिक्षित होना, स्कूल का समय इत्यादि समस्याएं उस रूप में अब विद्यमान नहीं है। इनकी तीव्रता में अत्यंत कमी आयी है। इसी प्रकार मनोवैज्ञानिक कारणों का प्रभावी तथा इन कारणों को सही मानने वालों के प्रतिशत में सामंजस्य नहीं हैं। आर्थिक कारण समष्टि के स्तर पर जिस प्रकार लागू हैं उसी प्रकार क्षेत्रीय स्तर पर भी प्रभावी है। अत: क्षेत्रीय नीति विशेष के लिए इनका विवेचन विशेष उपयोगी नहीं है।

अत: सबसे महत्वपूर्ण समस्या स्कूलों का न होना अथवा उनका भौगोलिक वितरण की अव्यावहारिकता है। अन्य समस्याएं तब महत्वपूर्ण होती है जब स्कूलों की उपलब्धि हो किंतु उनका सदुपयोग न हो। स्कूलों की तुलना में बालिका स्कूलों की

संख्या तथा उनका भौगोलिक वितरण वह मूलभूत समस्या है जिसके संदर्भ में विद्वानों में मतैव्य है। पूरे देश में बालकों के स्कूलों की तुलना में बालिका स्कूलों की संख्या अत्यंत कम है। अभिभावक अपनी लड़कियों को लड़कों के स्कूल में भेजना नहीं चाहते (दास1982)। तराई तथा सुदूर क्षेत्रों में अभिभावकों के लिए बालिकाओं को स्कूल भेजना एक दुरूह कार्य है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह समस्या भयावह है (डेलगाडों 1975)। जब स्कूल छोड़ने वालों की संख्या पर विचार किया जाता है तो स्कूल न होने की समस्या सामन्यतया अछूती रह जाती है (डेविल 1980)। भौगोलिक आधार पर स्कूलों का वितरण तद्नुरूप वित्तीय तथा अन्य साधनों का वितरण एक ऐसी समस्या है कि जिस पर क्षेत्रवार ध्यान दिये जाने की महती आवश्यकता है। यह समस्या उन क्षेत्रों में जहां जनसंख्या का घनत्व कम है तथा उनका वितरण बिखरा हुआ है अधिक विकृत है (मुनीशरजा, तथा अन्य 1980)।

प्रस्तुत लेख में उपर्युक्त जिलों में बालिकाओं के स्कूलों के वितरण का अध्ययन किया गया है जिससे इस समस्या की गहनता का पता लगता है। इसके लिए उपर्युक्त जिलों के सम्मिलित मानचित्र का प्रयोग किया गया है। जिनमें राज्य सीमा, जिला सीमा, रेल, सड़क,बालिका उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय, बालिका हायर सेकण्डरी स्कूल, बालिका जूनियर हाई स्कूल आदि को दर्शाया गया है।

मानचित्र से यह स्पष्ट होता है कि विद्यालयों का केन्द्रीयकरण मुख्य रूप से जिला मुख्यालयों में है। वाराणसी इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। वाराणसी, चन्दौली तथा भदोही जो पुराने वाराणसी जिले के ही हिस्से है, में विद्यालयों का वितरण लगभग समरूप है। चकिया तहसील इस संदर्भ में अपवाद है। जहां केवल एक जूनियर हाई स्कूल की सूचना है। दो विद्यालयों के बीच की औरत सीधी दूरी लगभग 35 किमी. है और दक्षिण में यदि अहरौरा का उदाहरण लिया जाए तो वहां 30 किमी. के व्यास में कोई उच्चतर माध्यमिक विद्यालय नहीं है। इस क्षेत्र के भीतरी इलाकों को मुख्य मार्ग से जोड़ने वाली सड़क नही है। इस तहसील में समुद्र तल से भूमि की ऊंचाई 100 से 300 मी. तथा जनसंख्या घनत्व 200 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है। अत: इस क्षेत्र की आवश्यकता छोटे आकार के ज्यादा स्कूलों की है। इससे मार्गों की समस्या भी कम होगी। जिलों के अन्य क्षेत्र यद्यपि स्कूलों के समरूप वितरण को प्रदर्शित करते है किंतु अनेक भीतरी क्षेत्रों में इनकी उपलब्धि नहीं है। उदाहरण के लिए चन्दौली और

जमानियां के बीच दो स्कूलों के बीच की सीधी दूरी 30 किमी. है। इसी प्रकार भदोही और गोपीगंज में भी दो स्कूलों के बीच की दूरी लगभग 20 किमी. है।

मिर्जापुर और सोनभद्र जिलों में अन्य जिलों की तुलना में भौगोलिक भिन्नता सबसे ज्यादा है। ज्यादातर विद्यालय जिला मुख्यालय में ही केंद्रित हैं। यद्यपि जिला मुख्यालय तथा लालगंज तहसील में जनसंख्या घनत्व लगभग समान है (200 से 400 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी.)लालगंज क्षेत्र में कोई विद्यालय नहीं है। मिर्जापुर मुख्यालय और राबर्टगंज को केवल दो सड़के एक दूसरे से जोड़ती है। किंतु इन जिलों के भीतरी क्षेत्र इन मुख्य सड़कों से सीधे नहीं जुड़े हैं। इन क्षेत्रों में कोई विद्यालय, कोई सड़क अथवा कोई अन्य ऐसी सुविधा नहीं है जिससे मुख्यालय में स्थित विद्यालयों तक पहुंचा जा सके। दुदधी एवं ओबरा में स्थित दो विद्यालयों की बीच की सीधी दूरी 40 किमी. ओबरा एवं राबर्टगंज से दुदधी के बीच की सीधी दूरी 60 किमी. है। इसी प्रकार ध ोरावल क्षेत्र क्षेत्र में 40 किमी. के व्यास में कोई विद्यालय नहीं है।

इस क्षेत्र की जमीनी ऊँचाई भिन्न-भिन्न है जो 150 से 450 मी. तक परिवर्तित होती है। अधिकतर क्षेत्र में जंगल है तथा जनसंख्या घनत्व 200 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. से कम है। इस क्षेत्र के भीतरी इलाके सड़क तथा अन्य यातायात के साधनों से रिक्त हैं।

जनपद जौनपुर में भी विद्यालयों का केंद्रीयकरण जिला मुख्यालय में ही हैं मछलीशहर एवं शाहगंज के बीच में कोई विद्यालय नहीं है। अत: मछली शहर के बाहरी सीमा पर रहने वाली लड़कियों को कम से कम 50 किमी. की यात्रा करके विद्यालय पहुंचना होगा। इन क्षेत्रों का जनसंख्या घनत्व अत्यंत अधिक है और जो लगभग जिला मुख्यालय के बराबर है(600से 900 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी.) यहां सड़कें भी अविकसित है तथा वही सड़कें पक्की है जो जिला मुख्यालय को जाती हैं।

गाजीपुर जिलों में विद्यालयों का वितरण लगभग समरूप है। फिरभी इनका मुख्य केंद्र जिला मुख्यालय ही है। जिला मुख्यालय का जनसंख्या घनत्व 600 से 800 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. है। यह जनसंख्या घनत्व वाराणसी तथा जौनपुर के ग्रामीण इलाकों के जनसंख्या घनत्व के बराबर है। किंतु जमानियां एवं सैदपुर तहसील के बीच के क्षेत्र में कोई विद्यालय नही है। इसी प्रकार जिले के उत्तरी क्षेत्र में दो विद्यालयों के बीच की सीधी दूरी लगभग 20 किमी. है।

बलिया जनपद में भी विद्यालयों का वितरण समान है। इस जिले में भी जनसंख्या घनत्व लगभग पूरे क्षेत्र में बराबर है (400 से 600 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी.) रसड़ा तथा बेल्थरा रोड़ के बीच की सीधी दूरी 35 किमी. से ज्यादा है जबकि नगरा में एक कन्या विद्यालय है। इस जिले में ग्रामीण क्षेत्र से मुख्यालय तक का सड़क संबंध और जिलों के ग्रामीण क्षेत्रों से अच्छा हैं किंतु जिले के पूर्वी हिस्से में समस्या की गहनता बढ़ती है।

अत: बालिकाओं की शिक्षा के विकास में अनेक समस्याएं हैं किंतु सबसे बड़ी और मूलभूत समस्या विद्यालयों का न होना ही है। पूर्वांचल में ब्लाक, तहसील, टाउन एरिया, ग्राम सभा एवं जनसंख्या के आधार पर स्कूलों का वितरण नही है। न ही वर्तमान विद्यालयों तक यातायात की ऐसी सुविधा विकसित है, जिससे भीतरी क्षेत्र की बालिकाएं सहजता से इन विद्यालयों तक पहुंच सकें। अत: बालिका शिक्षा के विकास के लिए जनसंख्या घनत्व को देखते हुए यह आवश्यक है कि पिछड़े तथा भीतरी क्षेत्रों में छोटे तथा बड़े आकार के बालिका विद्यालय खोले जाएं जिनमें तथा क्षेत्रीय आवश्यकताओं के बीच तादात्मय हो।

सन्दर्भ

अनवाना, (1987) : एजुकेशन बैकवर्डनैस जर्नल ऑफ इंडियन एजुकेशन

बेगल, जे. (1956) : वूमन एजुकेशन इन ईस्टर्न इंडिया, द वर्ल्ड प्रेस प्रा. लि. कलकत्ता

भंडारी, आर.के. (1982) : एजुकेशनल डवलपमेंट ऑफ वूमन, द एजूकेशनल क्वार्टली वाल्यूम 34 अंक-3

दाश, एल.सी. (1982) : प्राब्लम एंड प्रायरिटी, इन द एजुकेशन ऑफ वूमन इन आसाम, द एजुकेशन क्वार्टली वाल्यूम 34 अंक-3

डलगॉडो, सी. (1875) : एजुकेशन टूडे, ब्लॉक चेंज इन लेटिन अमेरिका, एजुकेशन ऑन मूव, यूनेस्को

डेबले, आई. (1980) : द स्कूल एजुकेशन ऑफ गर्ल, यूनेस्को

समाज कल्याण - हिन्दी मासिक पत्रिका अंक अप्रैल, जून, अगस्त, 2006

सर्व शिक्षा अभियान - दीर्घ कालीन परियोजना, वार्षिक कार्य योजना एवं बजट (2006-2007), वाराणसी

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 3, दिसम्बर 2008

शोध टिप्पणी/संवाद

उत्तर प्रदेश के बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों का समायोजन

कमलेश कुमार चौधरी*

किसी भी राष्ट्र की महत्ता उस राष्ट्र के नागरिकों के गुणों पर आधारित होती है। नागरिकों के गुण मुख्य रूप से शिक्षा के गुण पर आधारित हैं। शिक्षा अच्छी प्रकार की तभी हो सकती हे, जब विद्यालयों में शिक्षण संबंधी अन्य सुविधाओं के साथ शिक्षण हेतु सुयोग्य, कर्मठ एवं समर्पित शिक्षक उपलब्ध हों। शिक्षकों का व्यवसाय के प्रति समर्पण एवं कर्मठता कुछ हद तक उनके समायोजन से भी प्रभावित होती है।

शिक्षा की प्रक्रिया में तीन तत्व सम्मिलित होते हैं– शिक्षक, शिक्षार्थी एवं पाठ्यक्रम। शिक्षक, पाठ्यक्रम के माध्यम से विद्यार्थियों में ज्ञान, भाव एवं कौशल विकसित करने का प्रयास करता है, जो एक जटिल प्रक्रिया है तथा आदान–प्रदान के फलस्वरूप सम्पन्न होती है।

मौरीसन ने ''अधिक परिपक्व व्यक्तित्व तथा कम परिपक्व व्यक्तित्व के मध्य गहन सम्पर्क, जिसमें बाद वाले को कुछ शिक्षा दी जाती है, शिक्षण कहा है''। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शिक्षण वह प्रक्रिया है, जिसके प्रारूप तथा परिचालन की व्यवस्था इसलिए की जाती है, जिससे छात्रों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाया जा सके। इस प्रकार शिक्षण सीखने को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया है।

प्रभावी शिक्षण हेतु जहां एक ओर पाठ्यक्रम का ऐसा होना आवश्यक है, जो विद्यार्थियों के अपेक्षाओं के अनुरूप हो, वहीं दूसरी ओर यह भी आवश्यक है कि शिक्षक योग्य एवं समर्पित हो। यहाँ यह ध्यातव्य है कि कर्त्तव्यनिष्ठ, सुयोग्य एवं

* उपाचार्य, शिक्षा विभाग, एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.

व्यवसाय के प्रति समर्पित शिक्षकों के अभाव में अच्छी से अच्छी शिक्षा व्यवस्था का असफल होना अवश्यम्भावी हैं, क्योंकि शिक्षा जहाँ सामाजिक परिवर्तन का उपकरण है, वहीं शिक्षक सामाजिक परिवर्तन का अभिकर्त्ता। इसलिए कहा गया है कि शिक्षक राष्ट्र के निर्माता हैं। नि: सन्देह किसी भी राष्ट्र के निर्माण में शिक्षक की केंद्रीय भूमिका को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। राष्ट्र की युवा पीढ़ी के निर्माण का गुरुत्तर दायित्व शिक्षकों का है। इसलिए कोठारी कमीशन ने कहा है कि ''भारत के भाग्य का निर्माण इस समय उसकी कक्षाओं में हो रहा है''राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में कहा गया है कि ''किसी समाज में अध्यापकों के दर्जे से उसकी सांस्कृतिक-सामाजिक दृष्टि का पता लगता है कहा गया है कि कोई राष्ट्र अपने अध्यापकों के स्तर से ऊँचा नहीं उठ सकता।''

नि:संदेह शिक्षा की प्रक्रिया में कक्षा के अंदर एवं कक्षा के बाहर शिक्षक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। शिक्षा-प्रक्रिया की सफलता -शिक्षक की दक्षता, उत्तरदायित्व बोध, सहभागिता एवं कर्त्तव्य निवर्हन की क्षमता इत्यादि पर आधारित होता है। हताश, निराश, एवं कुण्ठित शिक्षकों से सुचारूप से अपने दायित्वों के निवर्हन की कल्पना नहीं की जा सकती। व्यक्ति का समायोजन भी उसकी कार्य-क्षमता को प्रभावित करता है। अत: प्राथमिक शिक्षा, जो कि शिक्षा की आधारशिला है, से संबंद्ध शिक्षकों के समायोजन की जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। इस जिज्ञासा का एक कारण यह भी है कि वर्तमान में उत्तर-प्रदेश के प्राथमिक विद्यालयों में दो तरह के प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक कार्यरत हैं। पहला वर्ग उन शिक्षकों का है, जिन्होंने द्विवर्षीय बेसिक शिक्षक का प्रशिक्षण प्राप्त किया है। दूसरा वर्ग उन शिक्षकों का है जिन्होंने बी. एड. के पश्चात 6 माह का 'विशेष बेसिक शिक्षक का प्रशिक्षण प्राप्त किया है। अत: इन दोनों प्रकार के शिक्षकों का समायोजन कैसा है? क्या प्रशिक्षण में विविधता के आधार पर इनके समायोजन में कोई अंतर है अथवा नहीं? इस तथ्य की जानकारी हेतु उपलब्ध संबंधित साहित्य का अवलोकन किया गया, जिसका विवरण निम्नवत है:

नर्बदा (1983) ने अपने अध्ययन में पाया कि शिक्षकों के समायोजन का स्तर औसत था। पुरूष शिक्षकों की तुलना में महिला शिक्षकों का समायोजन अच्छा था। अग्रवाल (1988) ने अपने अध्ययन से निष्कर्ष निकाला कि प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत अधिक प्रभावी शिक्षक कम प्रभावी शिक्षकों की तुलना में बेहतर रूप से

समायोजित थे। अधिक प्रभावी शिक्षकों की समायोजन समस्याओं में सामाजिक कारक मुख्य थे, जबकि कम प्रभावी अध्यापकों में भावनात्मक कारक अधिक प्रभावी पाये गये। गुप्ता (1988) ने निष्कर्ष निकाला कि प्रभावी कला वर्ग के अध्यापक, प्रभावी विज्ञान वर्ग के अध्यापकों की तुलना में मनोवैज्ञानिक, सामाजिक व शारीरिक रूप से बेहतर समायोजित थे। प्रभावी कला वर्ग के अध्यापक, प्रभावी विज्ञान वर्ग के अध्यापकों की अपेक्षा व्यक्तिगत जीवन में भी अधिक समायोजित थे। गोयल एण्ड चोपड़ा (1989) ने अपने अध्ययन में पाया कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति एवं गैर अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के छात्राध्यापकों के समायोजन में अंतर नहीं था। सुन्दराजन, गोविंदराजन एवं राजशेखर (1994)ने शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के समायोजन का अध्ययन किया है। पुरूष शिक्षक प्रशिक्षणार्थी, महिला शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में भावनात्मक एवं सामाजिक क्षेत्र में बेहतर समायोजित पाये गये, जबकि स्वास्थ्य के क्षेत्र में महिला प्रशिक्षणार्थियों का समायोजन पुरूष प्रशिक्षार्णियों से बेहतर पाया गया।

सिंह एवं बाबा (1996) ने कामकाजी महिलाओं की समायोजन समस्याओं को अपने अध्ययन का विषय बनाया। इन्होंने अन्य कामकाजी महिलाओं की अपेक्षा अध्यापिकाओं का सामाजिक समायोजन संतोषजनक तथा व्यावसायिक समायोजन बेहतर पाया गया। शकुन्तला एवं सबापथी (1999) ने अपने अध्ययन में पाया कि महिला-शिक्षक, पुरूष-शिक्षकों की तुलना में बेहतर समायोजित थी। पाण्डे एवं देव (2003) ने अपने अध्ययन में पाया कि अध्यापकों का समायोजन घर व कार्य क्षेत्र की समस्याओं से सीधा जुड़ा हुआ है। बेहतर समायोजित शिक्षकों में व्यवसाय संबंधी समस्याएं कम आती हैं। ग्रेवाल (2004) ने अपने अध्ययन में पाया कि लिंग भेद के आधार पर शिक्षक-प्रशिक्षकों के समायोजन में अंतर नहीं था। आयु के आधार पर इनके समायोजन में अंतर पाया गया। अनुभव बढ़ने के साथ-साथ समायोजन स्तर बढ़ता है।

उपर्युक्त अध्यापक समायोजन संबंधी अध्ययनों में से कोई भी अध्ययन ऐसा प्राप्त नहीं हुआ है, जिसमें बेसिक शिक्षा परिषद उ.प्र. के प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन की तुलनात्मक रूप से जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया हो। इसी कमी की पूर्ति हेतु प्रस्तुत अध्ययन किया गया।

अध्ययन के उद्देश्य

1. प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन की जानकारी प्राप्त करना।
2. लिंगानुसार प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन का अध्ययन करना।
3. शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी. सी. शिक्षकों के समायोजन का अध्ययन करना।

परिकल्पना

1. प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन में अंतर नहीं है।
2. लिंगानुसार प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन में अंतर नहीं है।
3. शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन में अंतर नहीं है।

अध्ययन विधि

प्रस्तुत अध्ययन में शोध की वर्णनात्मक विधि को अपनाया गया है। इस अध्ययन में न्यादर्श के रूप में बेसिक शिक्षा परिषद उत्तर-प्रदेश द्वारा संचालित फैजाबाद एवं अम्बेडकर नगर जनपद के प्राथमिक विद्यालयों में सत्र 2007-08 में कार्यरत 393 शिक्षकों का चयन सप्रयोजन न्यादर्शन विधि द्वारा दत्त संकल्न हेतु किया गया है, इसमें 199 शिक्षक बेसिक शिक्षा प्रमाण पत्र धारक (बी.टी.सी) तथा 194 विशिष्ट बेसिक शिक्षा प्रमाण पत्र धारक (विशिष्ट बी.टी.सी.) थे।

दत्त संकलन हेतु रश्मि ओझा द्वारा निर्मित ''टीचर एडजेस्टमेंट इन्वेन्टरी (टी.ए. आई.) को प्रयोग में लाया गया है। इस परीक्षण की विश्वसनीयता पुनर्परीक्षण विधि से 0.98 एवं अर्द्धविच्छेद विधि से 0.87 ज्ञात की गयी है। इस परीक्षण की विषय वस्तु वैधता तथा वेल्स के समायोजन इन्वेन्टरी के भारतीय रूपान्तरण प्रारूप के साथ संदर्भित वैधता ज्ञात की गयी और इसे वैध पाया गया। मैनुअल के अनुसार प्रत्येक कथन पर

अंक प्रदान कर, उनका योग ज्ञात किया गया। अध्ययन के उद्देश्यों के अनुसार प्राप्त प्रदत्तों को अनेक समूहों में वर्गीकृत कर उनसे निष्कर्ष निकालने हेतु मध्यमान, मानक विचलन एवं टी- मान की गणना की गयी है।

विश्लेषण, व्याख्या एवं परिणाम

तालिका-1

प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन का विवरण-

क्र.स.	समूह का नाम	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी. मान
1.	शिक्षक (बी.टी.सी.)	199	29.64	5.23	6.46**
2.	शिक्षक (विशिष्ट बी.टी.सी.)	194	26.15	5.48	

*टी. मान, 0.01 स्तर पर सार्थक

तालिका-1 को देखने से विदित होता है कि बेसिक शिक्षा परिषद उत्तर प्रदेश द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन का मध्यमान 29.64 एवं मानक विचलन 5.23 तथा विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन का मध्यमान 26.15 एवं मानक विचलन 5.48 पाया गया। बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन का प्राप्त यह मध्यमान इनके अच्छे समायोजन को व्यक्त करता है। मानक विचलन से स्पष्ट है कि बी.टी.सी. शिक्षकों की अपेक्षा विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन में अधिक असमानता थी। इन दोनों समूहों के मध्य समायोजन का टी.मान 6.46 पाया गया। यह टी. मान (Df-.391)0.01 स्तर पर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना ''प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन में अंतर नहीं है।'' अस्वीकार की गई। इससे यह निष्कर्ष निकला कि बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन में सार्थक अंतर था। विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों की अपेक्षा बी.टी.सी. शिक्षकों का समायोजन सार्थक रूप से अधिक अच्छा पाया गया।

तालिका-2

लिंगानुसार प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन का विवरणः

क्र.स.	समूह का नाम	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी. मान
1.	पुरूष शिक्षक (बी.टी.सी.)	136	29.32	5.20	
2.	पुरूष शिक्षक (विशिष्ट बी.टी.सी.)	115	26.56	5.60	4.00**
3.	महिला शिक्षक (बी.टी.सी.)	63	30.33	5.27	
4.	महिला शिक्षक (विशिष्ट बी.टी.सी.)	79	25.56	5.28	5.30**

** टी मान, 0.01 स्तर पर सार्थक ।

तालिका -2 में प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरूष एवं महिला बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन की स्थिति को दर्शाया गया है। इस तालिका पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि बेसिक शिक्षा परिषद उत्तर-प्रदेश द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. महिला शिक्षकों के समायोजन का मध्यमान सर्वाधिक 30.33 पाया गया तथा मानक विचलन 5.27 पाया गया। विशिष्ट बी.टी.सी. महिला शिक्षकों के समायोजन का मध्यमान सबसे कम 25.56 एवं मानक विचलन 5. 28 पाया गया। पुरूष बी.टी.सी. एवं पुरूष विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन का मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमशः 29.32 एवं 5.20 तथा 26.56 एवं 5.60 पाया गया। पुरूष बी.टी.सी. एवं महिला बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन का मध्यमान क्रमशः पुरूष विशिष्ट बी.टी.सी. एवं महिला विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन के मध्यमान से अधिक था, किंतु ये चारों ही मध्यमान इन शिक्षकों के अच्छे समायोजन के द्योतक हैं। मानक विचलन से स्पष्ट होता है कि विशिष्ट बी.टी.सी. पुरूष शिक्षकों के समायोजन में सबसे अधिक विभिन्नता थी, सबसे कम असमानता बी.टी.सी. पुरूष

शिक्षकों के समायोजन में पायी गयी। बी.टी.सी. पुरूष शिक्षकों एवं विशिष्ट बी.टी.सी. पुरूष शिक्षकों के समायोजन के मध्य टी. मान 4.00 ताकि बी.टी.सी. महिला शिक्षकों एवं विशिष्ट बी.टी.सी. महिला शिक्षकों के समायोजन के मध्य टी.मान 5.30 पाया। ये दोनों ही टी.मान 0.01 स्तर पर सार्थक है। अत: इस संबंध में शून्य परिकल्पना ''लिंगानुसार प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन में अंतर नहीं है।'' को अस्वीकार किया गया। इससे यह निष्कर्ष निकला कि बी.टी.सी. पुरूष शिक्षकों का समायोजन विशिष्ट बी.टी.सी. पुरूष शिक्षकों से तथा बी.टी.सी.मलिा शिक्षकों का समायोजन विशिष्ट बी.टी.सी. महिला शिक्षकों के समायोजन से सार्थक रूप से अधिक बेहतर था।

तालिका-3

शहरी एवं ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन का विवरण:

क्र.स.	समूह का नाम	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी. मान
1.	शहरी प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. शिक्षक	96	29.19	5.07	
					3.17**
2.	शहरी प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षक	75	26.59	5.60	
3.	ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. शिक्षक	103	30.07	5.37	
					5.12**
4.	ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षक	119	25.87	5.13	

**टी मान, 0.01 स्तर पर सार्थक।

तालिका–3 को देखने से विदित होता है कि शहरी प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन का मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमशः 29.19 एवं 5.07 तथा 26.59 एवं 5.60 पाया गया। ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन का मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमशः 30.07 एवं5.37 तथा 25.87 एवं 5.13 पाया गया। इन चारों समूहों के शिक्षकों के समायोजन के प्राप्त, ये मध्यमान, इन शिक्षकों के अच्छे समायोजन का द्योतक है। शहरी प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत विशिष्ट बी. टी.सी. शिक्षकों के समायोजन में सबसे अधिक असमानता पायी गयी, जबकि सबसे कम असमानता शहरी प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन में पायी गयी। शहरी प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन के मध्य टी. मान 3.17 तथा ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन के मध्य टी.मान 5.92 पाया गया । ये दोनों ही टी. मान 0.01 स्तर पर सार्थक है। अतः इस संबंध में शून्य परिकल्पना ''शहरी एवं ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन में अंतर नहीं है।'' को अस्वीकार कर दिया गया। इससे यह निष्कर्ष निकला कि शहरी एवं ग्रामीण दोनों ही प्रकार के प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन में सार्थक अंतर था। शहरी एवं ग्रामीण दोनों ही प्रकार के प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. शिक्षक, विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों से सार्थक रूप से अधिक बेहतर समायोजित थे।

निष्कर्ष

1. प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों का समायोजन अच्छा पाया गया।
2. प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों की तुलना में बी.टी. सी. शिक्षक सार्थक रूप से अधिक बेहतर समायोजित थे।
3. प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. पुरूष एवं बी.टी.सी. महिला शिक्षक, क्रमशः विशिष्ट बी.टी.सी. पुरूष एवं महिला शिक्षकों से सार्थक रूप से अधिक बेहतर समायोजित थे।

4. शहरी एवं ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. शिक्षकों का समायोजन, शहरी एवं ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के समायोजन की तुलना में सार्थक रूप से अधिक अच्छा था।

सुझाव

अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों से विदित होता है कि बेसिक शिक्षा परिषद उत्तर-प्रदेश द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. शिक्षकों का समायोजन, विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों की तुलना में अच्छा था। इससे स्पष्ट होता है कि बी.एड. उपाधि धारक शिक्षकों के प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षक के रूप में चयनोपरांत मात्र 6 माह के विशेष प्रशिक्षण द्वारा इन शिक्षकों को द्विवर्षीय बी.टी.सी. प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों के समकक्ष प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापन हेतु तैयार नहीं किया जा सका है। सम्भवत: उच्च योग्यता धारक होने के कारण भी इन शिक्षकों का प्राथमिक विद्यालयों में समायोजित प्रभावित हो रहा है। बी.एड. डिग्री धारक शिक्षक बेरोजगारी के कारण प्राथमिक विद्यालयों में नियुक्ति प्राप्त कर 6 माह के विशेष प्रशिक्षण को प्राप्त कर अध्यापक, तो बन जा रहे हैं, किंतु इन विद्यालयों में बी.टी.सी. शिक्षकों के समान समायोजित नहीं हो पा रहे हैं। अत: सरकार को चाहिए कि बी.एड. कालेजों के खोलने के स्थान पर बी.टी.सी. पाठ्यक्रम को संचालित करने वाले विद्यालय खोलने को प्राथमिकता दें, जिससे प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षण हेतु पर्याप्त संख्या में बी.टी.सी. डिग्री धारक शिक्षक उपलब्ध हो सकें तथा प्राथमिक शिक्षकों की कमी के चलते बी. एड. डिग्री धारक शिक्षकों की नियुक्ति हेतु विवश न होना पड़े।

संदर्भ

अग्रवाला, एस. (1988): *ए स्टडी ऑव एडजेस्टमेंट प्रॉब्लम्स एण्ड देयर रिलेटिड फैक्टर ऑफ मोर इफैक्टिव एंड लेस इफैक्टिव टीचर्स,* इन फिफ्थ सर्वे ऑफ एजूकेशनल रिसर्च, नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी., 2000, वाल्यूम-2 पृ. 1436

गोयल, जे.सी. एंड चोपड़ा, आर.के. (1989) : *रिलेशनशिप ऑफ सेल्फ कान्सेप्ट, एटीट्यूड एंड एडजेस्टमेंट विद एचीवमेंट ऑफ शिड्यूल कास्ट/शिडयूल ट्राइब्स एंड नॉन शिडयूल कास्ट/शिड्यूल ट्राइब्स स्टूडेंट टीचर्स,* वही, पृ.-1640

ग्रेवाल, एस.के. (2004) : *जॉव स्ट्रैस, जॉब सैटिस्फैक्शन, एडजेस्टमेंट एंड इन्ट्रैस्ट ऑफ टीचर्स एजूकेटर्स एज रिलेटिड टू देयर जॉव प्लेसमेंट,* अन्पब्लिस्ड पी-एच.डी. थेसिस (एजूकेशन), चंडीगढ़।

गुप्ता, बी.डी. (1988): *इन्टेलीजेन्स, एडजेस्टमेंट एंड पर्सनेलिटी नीड्स ऑफ इफैक्टिव टीचर्स इन साइन्स एंड आर्टस,* पूर्वोद्धृत, पृ. 884

कोठारी कमीशन संदर्भ बघेला, एच.एस. माहेश्वरी, पी.एन. भोजक, बी.एल. (1985): *शिक्षा तथा भारतीय समाज,* आगरा; हर प्रसाद भार्गव, पृ. 40

नर्बदा, इ (1983) : *शिक्षकों की प्रभावशीलता, समायोजन एवं उनकी शिक्षण अभिक्षमता का अध्ययन,* अप्रकाशित लघु शोध प्रबंध, शिक्षा शास्त्र, एम.डी.एस. विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान

पाण्डेय, एस. एंड देव, आर. (2003): *हाउ डिफरेन्ट आर द प्राब्लम्स ऑफ मैरिड एंड अनमैरिड वूमन टीचर्स,* एजूट्रैक्स, वाल्यूम–2 नं. 5, 34–39

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) : नई दिल्ली, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 20

शकुन्तला, के.एस. एंड सबापथी, टी. (1999), *टीचर्स एडजेस्टमेंट एज रिलेटिड टू इन्ट्रेस्ट इन एंड एटीट्यूड टूवर्ड्स टीचिंग,* साइकोलिगुआ, वाल्यूम 29(2), पृ. 133–136

सिंह, ए. एंड बाबा, एस.के. (1996): *एडजेस्टमेंट प्रॉब्लम्स ऑफ वर्किंग वूमन,* प्राची जरनल ऑफ साइको–कल्चरल डाइमेन्शन्स, वाल्यूम–12 (1), पृ. 15–20

सिंह, टी. (1984), *शिक्षण एवं शिक्षण कौशल,* जौनपुर : भारती प्रकाशन, पृ. 8

सुन्दराजन, एस. गोविन्दराजन, एम. एंड राजशेखर, एस. (1994): *सेल्फ कॉन्सेप्ट एंड एडजेस्टमेंट प्रॉब्लम्स ऑफ बी.एड. टीचर्स ट्रेनीस,* एक्सपेरीमेंट इन एजुकेशन, वाल्यूम–22 (2) पृ. 27–34

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 3, दिसम्बर 2008

शोध टिप्पणी/संवाद

उच्च शिक्षा का वित्तीय प्रबंधन

शैलजा सिंह*

सारांश

उच्च शिक्षा किसी भी देश की समृद्धि तथा सम्पन्नता का द्योतक है। यह राष्ट्र के विकास का महत्वपूर्ण घटक है। यह ऐसे मानव विकास को प्रोत्साहन देता है जो आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक व बौद्धिक सभी क्षेत्रों में प्रगति करता हुआ एक विकसित एवं क्रियाशील समाज का निर्माण कर सके।

भारत में आधुनिक उच्च शिक्षा का प्रारंभ अंग्रेजों द्वारा किया गया। सन् 1854 में वुड के घोषणा पत्र के पश्चात् सन् 1857 में कलकत्ता, बम्बई व मद्रास में विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। इन विश्वविद्यालयों की अर्थव्यवस्था पूर्णत: सरकार के अधीन थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक भारत में 21 विश्वविद्यालय स्थापित हो चुके थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् उच्च शिक्षा के क्षेत्र में संख्यात्मक विकास बड़ी तेजी से हुआ। सन् 2006 तक यहां 367 विश्वविद्यालय, 18064 महाविद्यालय, 4,88,000 शिक्षक और 11.2 मिलियन छात्र संख्या हो गयी। (यू.जी.सी. रिपोर्ट 2007)

आज देश में उच्च शिक्षा का वृहद आकर हो गया है विश्व में उच्च शिक्षा के विस्तार की दृष्टि से भारत का दूसरा स्थान है। भारत के शैक्षिक विकास का इतिहास साक्षी है कि प्राचीन काल से ही शैक्षिक संस्थाओं के पोषण का भार शासकों के साथ-साथ समाज पर भी था पर शासकों या व्यक्तिगत स्तर पर दिया गया आर्थिक दान किसी व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं किया जाता था। लेकि न धीरे-धीरे इसमें परिवर्तन आता गया। शुल्क के रूप में छात्रों से धन लिया जाने लगा जो शिक्षण संस्थाओं के व्यय

* रीडर, शिक्षाशास्त्र विभाग, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

का आंशिक भार वहन करता था और 1954 के बाद से आधुनिक उच्च शिक्षा पूर्णत: अंग्रेजी शासन के आधीन हो गयी। विश्वविद्यालयों के वित्तीय संसाधन जुटाने की जिम्मेदारी सरकार पर थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत देश में प्रजातंत्रात्मक शासन व्यवस्था लागू हुई और राष्ट्र के पुनर्निर्माण में शिक्षा के व्यापक महत्व को स्वीकार करते हुए शिक्षा का दायित्व सरकार पर डाला गया। उच्च शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका को ध्यान में रखते हुए स्वतंत्र भारत में शिक्षा संबंधी प्रथम आयोग विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948) का गठन सर्वपल्ली डा. राधाकृष्णनन् की अध्यक्षता में किया गया । आयोग ने राज्य द्वारा उच्च शिक्षा को आर्थिक सहायता प्रदान करने के अपने उत्तरदायित्व को वहन करने की सिफारिश की। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने उच्च शिक्षा के विस्तार व विकास को उपयुक्त दिशा प्रदान करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.) की स्थापना का भी सुझाव दिया जिसे वर्ष 1956 में भारतीय संसद ने एक अधिनियम बनाकर मूर्तरूप प्रदान किया। इसका मुख्य उद्देश्य उच्च शिक्षा में गुणवत्ता को बनाये रखना और उच्च शिक्षा संस्थानों को अनुदान प्रदान करना था।

शिक्षा आयोग (1964-66) ने भी उच्च शिक्षा की वित्तीय व्यवस्था का भार सरकार पर डाला और कहा यदि शिक्षा का विकास और राष्ट्र की प्रगति की जानी है तो उच्च शिक्षा पर अधिक धन व्यय करना होगा। (शिक्षा पर व्यय किये जाने वाले धन को व्यय करने के संबंध में शिक्षा आयोग ने धनराशि का 2/3 भाग विद्यालय शिक्षा पर और 1/3 भाग उच्च शिक्षा पर व्यय करने का सुझाव दिया था)।

डा0 कोठारी का मत था कि धन की व्यवस्था करना राज्यों का कर्त्तव्य है पर क्योंकि राज्य इस कार्य को अकेले नहीं कर सकते है इसलिए उन्होंने शिक्षा कर लगाने का सुझाव भी दिया। शिक्षा आयोग ने भी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को अधिक सशक्त बनाने और उच्च शिक्षण संस्थाओं को अनुदान देने के साथ-साथ उनमें गुणवत्ता बनाये रखने का उत्तरदायित्व देने का सुझाव दिया (शिक्षा आयोग, 1966)।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) और प्रोग्राम ऑफ एक्शन (1992) में भी उच्च शिक्षा संस्थानों के विस्तार, छात्र शुल्क का पुनरीक्षण, और छात्रवृत्ति देने का प्रावधान किया गया।

उच्च शिक्षा में प्रतिमान परिवर्तन

वैश्विक स्तर पर सन् 1991 में उदारीकरण की प्रक्रिया तेज हुई और नयी आर्थिक नीति से प्रभावित होकर भारतीय सरकार ने भी उच्च शिक्षा के क्षेत्र में निजीकरण को बढ़ावा देना प्रारंभ किया। आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992–97) की अवधि में सरकार की यह इच्छा प्रकट हुई जिसमें उन्होंने कहा कि परम्परागत विश्वविद्यालयों व महाविद्यालय न खोले जाय। बल्कि उन्होंने स्वयं सेवी संस्थाओं और व्यक्तिगत स्तर पर उच्च शैक्षिक संस्थाओं को शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित किये बिना खोलने का सुझाव दिया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) ने भी शैक्षिक संसाधनों के जुटाने में विभिन्न प्रकार के स्रोंतों द्वारा अर्थ जुटाने की ओर संकेत किया था, ''जहां तक संभव हो, इन विभिन्न तरीकों से साधन जुटाये जायें –चंदा इक्ट्ठा करना, इमारतों की रख –रखाव तथा रोजमर्रा के काम में आने वाली वस्तुओं की पूर्ति में स्थानीय लोगों की मदद लेना, उच्च शिक्षा स्तर पर फीस बढ़ाना तथा उपलब्ध साधनों का बेहतर प्रयोग करना।'' (राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986:11.2) विश्व बैंक द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट 'विकासशील देशों में शिक्षा पर व्यय' (1994) में भी आर्थिक संसाधनों की कमी को देखते हुए शिक्षा पर आने वाले खर्च का एक बड़ा भाग अभिभावकों के ऊपर डालने की नीति अपनाने का सुझाव दिया गया। (अग्रवाल, 2002:21)

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भी शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने तथा उच्च शिक्षा को नई सूचना तकनीकी द्वारा उन्नतशील बनाने के लिए जिस विशाल धनराशि की आवश्यकता थी, उसे जुटा पाने में सरकार की असमर्थता जाहिर करते हुए अन्य स्रोंतों से संसाधन जुटाने का तर्क दिया। उसी दौरान खाड़ी संकट के बहाने यू.जी. सी. ने उच्च शिक्षा के बजट में 35 प्रतिशत की कटौती कर दी और विश्वविद्यालयों को निर्देश दिया कि वे अपने संसाधन स्वयं जुटायें।

केंद्र सरकार के निर्देश पर यू.जी.सी. ने 1992 में न्याय मूर्ति के. पुन्नैया की अध्यक्षता में एक उच्च स्तरीय समिति का गठन किया। समिति ने विश्वविद्यालयों को अपने वित्तीय संसाधना जुटाने का सुझाव दिया तथा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में निजीकरण की संस्तुति की।

यूनेस्को की रिपोर्ट 'लर्निंग द ट्रेजर विदिन: स्पेक 1996' में भी कहा गया कि उच्च शिक्षा संस्थाओं को राष्ट्रीय बजट का बोझ कम करने के लिए अपने संसाधन स्वयं जुटाने चाहिए।

सन् 1997 में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में एक और कुठाराघात हुआ। सरकारी अनुदानों के संबंध में विचार करते हुए शिक्षा को दो भागों में बांटा गया। उच्च शिक्षा को 'नान मेरिट गुड' या 'अलाभकर वस्तु' और प्राथमिक शिक्षा को 'मेरिट गुड' या लाभकर वस्तु की क्षेणी में रखा गया। परिणाम स्वरूप भारत सरकार ने उच्च शिक्षा पर से सब्सीडी कम करनी शुरू कर दी इस विवादास्पद तथ्य के समर्थन में कहा गया कि उच्च शिक्षा व्यक्ति को लाभ पहुंचाती है न कि समाज को। इसलिए सुझाव दिया गया कि उच्च शिक्षा को आर्थिक सहायता के लिए व्यक्तिगत हाथों में सौंप देना चाहिए। परंतु नीति निर्माता ये भूल गये कि शिक्षा का प्रत्येक स्तर एक दूसरे का पूरक है। प्राथमिक व माध्यमिक स्तर का विस्तार व गुणात्मक विकास दक्ष एवं योग्य शिक्षकों के अभाव में संभव नहीं है। इसके साथ ही विश्वविद्यालय उच्च स्तरीय प्रशिक्षण प्रदान कर विज्ञान व तकनीकी में दक्ष मानव शक्ति पैदा करती है। जो किसी भी देश के सामाजिक व आर्थिक विकास के लिए अत्यंत आवश्यक हैं अत: इस स्तर पर किसी भी प्रकार का वित्तीय संकट पूरी शिक्षा व्यवस्था की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकता है।

सन् 1999 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के कुलपति महमुदर्रहमान की अध्यक्षता में केंद्रीय विश्वविद्यालयों के शैक्षणिक ढ़ाचे की समीक्षा हेतु एक समिति का गठन किया। साथ ही दिल्ली विश्वविद्यालय के संबंद्ध महा विद्यालयों की वित्तीय समीक्षा के लिए अन्नादुरै विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो0 आन्नदकृष्ण की अध्यक्षता में दूसरी समिति का गठन किया गया। इन दोनों समितियों ने बढ़ी हुई फीस का एक नया ढांचा तैयार किया । इसके अनुसार शिक्षण संस्थाओं को कुल बजट का 7 प्रतिशत फीस जुटाना होगा। जिसे प्रति वर्ष 1 प्रतिशत बढ़ाकर 15 प्रतिशत तक करना होगा। महमुदर्रहमान समिति ने सुझाव दिया कि भविष्य में एक छात्र पर होने वाले पूरे शैक्षणिक व्यय को शिक्षण शुल्क के रूप में छात्रों से लिया जाना चाहिए। उन्होंने शिक्षण शुल्क को तीन गुना बढ़ाने की संस्तुति की।

भारतीय विश्वविद्यालय संघ के एक अध्ययन के अनुसार 30 प्रतिशत से भी कम छात्र बढ़ी हुई फीस दे सकते है। यहां यह उल्लेखनीय है कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने

वाले आयुवर्ग के युवक व युवतियों में मात्र 9.35 प्रतिशत ही उच्च शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश पाते है। इस बढ़ी हुई फीस का परिणाम होगा कि निम्न एवं निम्न मध्यम वर्ग के तथा ग्रामीण क्षेत्र के अधिकांश विद्यार्थी उच्च शिक्षा ग्रहण करने से वंचित रह जायेगें। स्वामी नाथन समिति ने व्यवसायिक शिक्षा के संबंध में वैकल्पिक आर्थिक स्रोतों की खोज करने का सुझाव दिया। 1997 में इंजीनियरिंग एवं मेडिकल कालेजों की फीस में 10 प्रतिशत से 80 प्रतिशत तक की वृद्धि की गयी थी। इसका दुष्परिणाम छात्रों की सामाजिक संरचना पर दिखाई देने लगा है। राष्ट्रीय सहारा दैनिक समाचार पत्र 12 सितम्बर 2008 के अनुसार आई.आई.एम., आई.आई.टी. और ट्रिंपल आई.टी. ने अपनी फीसों में भारी इजाफा किया है कहीं कहीं तो फीस साढ़े चार लाख से बढ़ाकर 11–12 लाख कर दी गयी है। महंगे प्रोफेशनल कोर्स समाज में तमाम विसंगतियों को लेकर आये हैं। जिसके दूरगामी परिणाम समाज के लिए अहितकर होंगे।

निजी उच्च शिक्षा संस्थाओं की मुहिम को तेज करने के लिए तथा मानव संसाधन विकास मंत्रालय व यू.जी.सी. की सोचनीय आर्थिक स्थिति का फायदा उठाते हुए उद्योगपतियों ने इस क्षेत्र में अपनी पहुँच बनानी शुरू कर दी। उदाहरण के लिए प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद के दो सदस्यों मुकेश अम्बानी और आदित्य बिरला ने 'पॉलिसी फ्रेम वर्क फॉर रिफार्म इन एडूकेशन' नामक प्रतिवेदन 24 अप्रैल 2000 को प्रधानमंत्री को सौंपा। इसमें सन् 2015 तक की शैक्षिक नीति प्रस्तावित की गयी थी। इसमें उच्च शिक्षा को निजी हाथों में सौंपने का सुझाव दिया गया था। उद्योगपति के रूप में अपने लाभ को पहले देखते हुए ही उन्होंने शिक्षा संबंधी नीतियों का गठन किया। एक समय था जब शिक्षा नीतियां देश के बौद्धिक वर्ग द्वारा तैयार की जाती थी जिसमें सर्वपल्ली डा. राधाकृष्णन (1948–49), प्रो. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर (1952–53) एवं डा. डी.एस. कोठारी (1964–66) प्रमुख थे। आज शैक्षिक नीतियाँ उद्योगपतियों द्वारा बनायी जा रही है। गेट्स में शिक्षा को 12 सेवाओं में से एक सेवा मानने के कारण भारत में उच्च शिक्षा के द्वार विदेशी विश्वविद्यालयों के लिए भी खुल गये हैं। ये वे दोयम दर्जे के विश्वविद्यालय है जिन्हें अपने देश में स्थान नहीं मिल पाया है। ये विदेशी व्यापारी भारत को एक बाजार के रूप में देख रहे हैं। फल स्वरूप निजी विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों का अनियन्त्रित विस्तार हो रहा है। और भारतीय शिक्षा व्यवस्था के समानान्तर वित्त आधारित डिग्री व्यवस्था चल रही है।

दसवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि में यू.जी.सी. ने उच्च शिक्षा प्रबन्ध को कारगर, कुशल एवं सामाजिक आर्थिक परिवर्तनों के प्रति उत्तरदायी बनाने के लिए विश्वविद्यालयों द्वारा संसाधन जुटाने की मुहिम 1995 में शुरू की गयी थी इसके उद्देश्य का वर्णन करते हुए यू.जी.सी. ने कहा कि विश्वविद्यालयों को अपने विकास में समाज की सहभागिता द्वारा संसाधन जुटाने के लिए प्रोत्साहित करना तथा विश्वविद्यालयों के विकास के लिए समाज से प्राप्त होने वाले संसाधनों के प्रवाह को प्रोत्साहित करना है। यू.जी.सी. का अंशदान सृजित किए गए साधनों का 25 प्रतिशत या अधिकतम 25 लाख जो भी कम हो, होगा। (वार्षिक रिर्पोट, यू.जी.सी., 2004–05)01–

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारंभ में अपनी प्राथमिकताएं निर्धारित करते हुए यू.जी.सी. ने उच्च शिक्षा में गुणवत्ता पर बल देते हुए पाँच लक्ष्णों का निर्धारण किया जिसमें छात्रों का नामांकन, समानसुविधाएं, गुणवत्ता व उत्कृष्टता, उपयुक्ता और मूल्य परक शिक्षा है। (यू.जी.सी., थ्रस्ट प्रायरिट्रीज ड्यूरिंग ग$^{वी}$ प्लान पीरियड, 2007)। सेलेक्टेड एडुकेशन स्टेटिस्टिक्स, (2003) के अनुसार 1950 में उच्च शिक्षा में नामांकन 7 प्रतिशत था जो 2003 तक 9.35 प्रतिशत हो गया है। ये वृद्धि अन्य देशों की तुलना में बहुत कम है। उदाहरण स्वरूप कनाडा में 100 प्रतिशत, यू.एस.ए. में 80 प्रतिशत, फ्रांस में 50 प्रतिशत और यू.के. में 30 प्रतिशत है। यहां तक कि हमारे देश में नामांकन संख्या इन्डोनेशिया (11 प्रतिशत) ब्राजील (12 प्रतिशत) और थाइलैण्ड (19 प्रतिशत) से भी कम है। (यू.जी.सी. इन्फारमेशन एण्ड स्टेटिस्टिक्स ब्यूरो, 2003)। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि में सरकार ने उच्च शिक्षा में नामांकन संख्या को 15 प्रतिशत तक बढ़ाने का लक्ष्य निर्धारित किया है।

ग्यारहवीं योजना में समावेशित उच्च शिक्षा (Inclusive Education) में सभी वर्ग के छात्रों को शिक्षा उपलब्ध कराना सरकार की प्राथमिकता है। छात्र नामांकन की दृष्टि से असमानता हर स्तर पर देखी जा सकती है जैसे राज्यों के बीच, ग्रामीण व शहरी इलाकों में, विभिन्न सामाजिक समूहों में, जातियों, पुरूष–स्त्री वर्ग या गरीब और अमीर में।

सन् 2000 में ग्रामीण अंचलों के छात्रों का नामांकन शहरी छात्रों 20.44 प्रतिशत की तुलना में 5.6 प्रतिशत था। राज्य स्तर पर केरल में उच्च शिक्षा में 21 प्रतिशत छात्र

नामांकित थे जब कि बिहार में मात्र 6 प्रतिशत। विभिन्न जाति वर्ग में भी असमानता देखने को मिलती है जैसे नेशनल सैम्पल सर्वे के अनुसार नामांकित छात्रों का राष्ट्रीय माध्य 10.10 प्रतिशत है जिसमें अनुसूचित जाति 5.09 प्रतिशत, अनुसूचित जनजाति 6.43 प्रतिशत और पिछड़े वर्ग 7 प्रतिशत है। ये असमानता ग्रामीण स्तर पर और भी विषम है।

मुस्लिम सम्प्रदाय का नामांकन संख्या कुल नामांकन का 5.23 प्रतिशत है जो राष्ट्रीय माध्य का आधा है। लिंग असमानता भी देखी जा सकती है। छात्राओं का नामांकन मात्र 8 प्रतिशत है जब कि छात्रों का 12 प्रतिशत। आर्थिक दृष्टि से समीक्षा करने पर गरीब छात्रों का नामांकन आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न छात्रों (12.8 प्रतिशत) की तुलना में मात्र 2.41 प्रतिशत है।

इस परिदृश्य में यू0जी0सी0 का उच्च शिक्षा से आर्थिक सहायता को धीरे-धीरे कम करना और विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों को अपने स्रोतों से धन संग्रह करने का निर्देश देना इस असमानता को और बढ़ायेगा न कि घटायेगा। उच्च शिक्षा और महंगी होगी तथा मध्यम वर्ग से और दूर होती जाएगी। एक तो अन्य देशों की तुलना में हमारे देश में नामांकन मात्र 9.35 प्रतिशत है उस पर आर्थिक बोझ उच्च शिक्षा से छात्रों को वंचित कर देगा।

इसका प्रभाव उच्च शिक्षा की गुणवत्ता पर भी पड़ रहा है। 21वीं सदी ज्ञान की सदी मानी जा रही है। ज्ञान आधारित अर्थ व्यवस्था में योग्य और कौशलपूर्ण मानव संसाधन का भूमंडलीकरण हो रहा है। प्रतिभाओं की मांग है। सभी राष्ट्र कुशल और प्रतिभाशाली जनशक्ति का विकास कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में सरकार द्वारा वित्तीय सहायता में कमी उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित कर रही है।

सरकार की कमजोर आर्थिक नीति का ही परिणाम है कि नौवीं पंचवर्षीय योजना के बाद से विश्वविद्यालयों में नवीन पदों का सृजन नहीं के बराबर हुआ और रिक्त पदों पर नियुक्तियां भी नहीं हो रही है। देश के 300 से अधिक विश्वविद्यालयों और 17000 से ज्यादा महाविद्यालयों में पढ़ रहे लगभग एक करोड़ छात्रों को पढ़ाने के लिए प्राध्यापकों के 4.50 लाख स्वीकृत पद है जिनमें 70,000 से अधिक खाली है। केंद्रीय विश्वविद्यालयों में स्वीकृत पद 9054 में से 2271 पद खाली है। इसी प्रकार

आई.आई.टी. और आई.आई.एम. की हालत भी कम चिन्ता जनक नहीं है। (राष्ट्रीय सहारा 4 सितंबर, 2008)। तदर्थ

नियुक्तियां समस्या का समाधान नहीं है। उच्च शिक्षा की गुणवत्ता शिक्षकों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। सरकार नये विश्वविद्यालय व महाविद्यालयों की संख्या में वृद्धि करने का फैसला तो करती है (ज्ञान आयोग)पर आवश्यक मानव बल पर समुचित ध्यान नहीं देती। यदि वास्तव में शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ावा और इसे सर्व सुलभ बनाना है तो सरकार को अपनी नीतियों में परिवर्तन करना चाहिए।

10 वीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत उच्च शिक्षा परक 25,179.07 करोड़ का खर्च आया जिसमें से यू.जी.सी. ने 10,306.50 करोड़ रूपये का अनुदान विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों को दिया जो कि बहुत कम है। (अहमद 2008)

निष्कर्ष

(1) शिक्षा पर सकल घरेलू उत्पाद का (जी.डी.पी.) का 6 प्रतिशत व्यय करने के लक्ष्य करना सरकार का उत्तरदायित्व है। जिसमें 1.5 प्रतिशत उच्च शिक्षा पर खर्च किया जाना चाहिए था पर वर्तमान में 1 प्रतिशत से भी कम धन राशि खर्च की जा रही है, जो अन्य देशों कि तुलना में बहुत कम है। जैसे यू.एस.ए. (6.5 प्रतिशत), केन्या में (6.2 प्रतिशत), फ्रांस (5.8 प्रतिशत) थाईलैण्ड (5 प्रतिशत) और जर्मनी 4.6 प्रतिशत यह तभी संभव होगा जब उच्च शिक्षा सरकार के एजेंडे में प्राथमिकता पर हो।

(2) अन्य वैकल्पिक स्रोतों से भी धन संग्रहकर समाज की सहभागिता प्रोत्साहित की जानी चाहिए पर इसकी कीमत पर सरकार को अपने हाथ वित्त सहायता से नहीं खीचने चाहिए।

(3) विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में लिये जाने वाले शुल्क का पुनरीक्षण करके उसमें उतनी ही वृद्धि की जाए जो कि छात्रों द्वारा आसानी से दी जा सके न कि तीन गुनी जैसे कि महमूदर्रहमान समिति के सुझाव में कहा गया था।

(4) स्ववित्त पोषित विद्यालयों में फीस पर सीलिंग लगनी चाहिए तथा इन विद्यालयों की गुणवत्ता का मूल्यांकन प्रतिवर्ष किया जाना चाहिए।

(5) प्राइवेट सैक्टर व विदेशी संस्थानों पर निर्भरता कम से कम होनी चाहिए।

(6) अन्तर्राष्ट्रीय अनुभव बताते है कि कोई भी देश आर्थिक रूप से उन्नतिशील नहीं हो सकता जब कि उच्च शिक्षा में नामांकन का अनुपात 20 प्रतिशत से कम न हों। भारत को विकसित राष्ट्र बनाने के लिए आवश्यक होगा कि विश्वविद्यालय और महाविद्यालय नये ज्ञान का सृजन, नये ज्ञान का प्रयोग करने की दक्षता अन्य देशों द्वारा सृजित ज्ञान को ग्रहण करना और बुद्धिमान मानव शक्ति का सृजन, जैसे विभिन्न कार्यों को करें और गुणवत्ता तथा संख्यात्मक में संतुलन बनाये रखें ।

(7) आप्रेशन ब्लेक बोर्ड जैसे कार्यक्रम उच्च शिक्षा स्तर पर भी चलाये जाने चाहिए। जिससे पाषित एवं स्व वित्तपोषित महाविद्यालयों में आधारभूत संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सके। (तिलक, 2007)

(8) उच्च शिक्षा को 'अलाभकारी' वस्तु के रूप में न देखकर 'प्रॉफिट गुड' माना जाए। क्योंकि विश्व बैंक के अध्ययन (1994) के अनुसार देश की आर्थिक समृद्धि का 64 प्रतिशत मानव पूंजी बनाती है। इस लिए मानव पूंजी और आर्थिक सम्पन्नता में घनात्मक सहसंबंध है।

(9) स्थायी शिक्षकों की नियुक्तियाँ तत्काल की जाए जिससे उच्च शिक्षा की गुणवत्ता प्रभावित न हो। अध्ययनों से प्रमाणित है कि शिक्षकों की व्यवसायिक संतुष्टि से अध्यापन की गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

(10) सरकार के पास भविष्य के लिए लंबी अवधि की योजना होनी चाहिए। जो शिक्षा के सभी -स्तरों पर संतुलित विकास कर सके। अनियन्त्रिता विकास को रोका जाए और बाजार की मांग के आधार पर आपूर्ति की जाए। (तिलक, 2007)

देश के विकास के लिए आवश्यक है कि उच्च शिक्षा में नामांकन, उपयुक्त शिक्षा तथा गुणवत्ता, उत्कृष्टता और अनुसंधान की शक्ति को बढ़ाया जाए। इसके लिए यू..जी.सी. द्वारा ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में ऐसे प्रयास किये जाये जिससे सरकार अधिक धन उपलब्ध कराये जो उच्च शिक्षा को उस प्रतिस्पर्धा के युग में विश्व की चुनौतियों का सामना करने में सक्ष्म कर सके और नये विश्वविद्यालय व महाविद्यालय खोले जा सकें जिससे अधिक नामांकन हो सके।

यदि देश को 2020 तक एक विकसित राष्ट्र के रूप में देखना है तो शैक्षिक संरचना के सभी स्तरों में समन्वय करते हुए सरकार द्वारा शिक्षा का एक एजेण्डे में प्राथमिकता देते हुए वित्तीय प्रबन्धन में अग्रणी भूमिका निभानी चाहिए। शिक्षा को राजनीति का मुद्दा न बनाकर देश के विकास का मुद्दा बनाया जाय।

संदर्भ

अग्रवाल, उमेशचन्द्र (2002) : निजीकरण की ओर अग्रसर उच्च शिक्षा योजना, सितम्बर, 2005

कलाम, ए.पी.जे. अब्दुल (2002) : इग्नीटेड माइंड्स पेगुइन

कोठारी डी.एस. (1970) : एडुकेशन एंड नेशनल डिवेलपमेंट (रिपोर्ट आफ द एजुकेशन कमीशन, (1964-66) भाग-3, नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी

तिलक, जे.बी.जी. (1999) : प्राइवेटाइजेशन ऑफ हायर एजुकेशन, प्रास्पेक्ट्स

तिलक जन्ध्याला (2007) : हायर एजुकेशन इन इंडिया फंडिंग एक्सेस, क्वालिटी और इक्विटी, न्यूपा, नई दिल्ली।

पुनैय्या, जस्टिस के कमिटी (1994) : यू.जी.सी. फंडिंग ऑफ इन्स्ट्यूटशन ऑफ हायर एजुकेशन (रिपोर्ट) नई दिल्ली

भोक्ता एन.पी. (2002) : उदारीकरण के दौर में उच्च शिक्षा की चुनौतियां परिपेक्ष्य, दिसम्बर 2002, न्यूपा, नई दिल्ली

मुदालियर, लक्ष्मण स्वामी (1953) : सकेन्ड्री एजुकेशन कमीशन (1952-53) रिपोर्ट, मद्रास, जुविटर प्रेस

यू.जी.सी. : वार्षिक रिपोर्ट-2004-05 : विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली-7

यू.जी.सी. (2007) : थ्रस्ट्स एंड प्रियांस्टीस ड्यूरिंग 11 प्लान पीरियड, नई दिल्ली

राधाकृष्णन्, सर्वपल्ली (1949) : रिपोर्ट ऑन यूनिवर्सिटी एजुकेशन दिल्ली मैनेजर ऑफ पब्लिकेशन

वर्ल्ड बैंक (1994) : हायर एजुकेशन द लेसन्स आफ एक्सपीरिएन्स, द वर्ल्ड बैंक वाशिंगटन डी.टी. इन यूनिवर्सिटी न्यूज 42(6), फरवरी 16-22, 2004

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 15, अंक 3, दिसंबर 2008

चिंतक और चिंतन

दौलत सिंह कोठारी का शिक्षा दर्शन

देवेंद्र सिंह

कोई भी चिन्तक विश्व के किसी भी कोने में रहकर ऐसा चिन्तन कर सकता है जिसकी सांदर्भिक उपादेयता अन्यत्र भी हो सकती है। चिन्तक के गूढ़ चिन्तन के आधार पर शिक्षा में व्याप्त शैक्षिक समस्याओं का समाधान आसानी से किया जा सकता है क्योंकि चिन्तन मात्र सैद्धांतिक अभ्यास ही नहीं होता वरन् नई शोध समस्याओं की तरफ इंगित भी करता है। ऐसे ही प्रख्यात भौतिक विज्ञानविद्, शिक्षाशास्त्री एवं मानवतावादी चिन्तक प्रो0 दौलत सिंह कोठारी हैं जिन्हें डी. एस. कोठारी नाम से सम्बोधित किया जाता है। डी.एस. कोठारी का जन्म 6 जुलाई 1906 को राजस्थान के मेवाड़ स्टेट उदयपुर में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री फतेहलाल कोठारी था, जो स्कूल में अध्यापक थे। कोठारी के तीन भाई एवं एक बहन थी। कोठारी के पिता का देहांत 38 वर्ष की अवस्था में सन् 1918 में हो गया। उस समय डी.एस. कोठारी की अवस्था 12 वर्ष की थी। उस समय कोठारी परिवार आर्थिक अवसाद में चला गया। कोठारी की प्रारभिंक शिक्षा गृहनगर उदयपुर में हुई। तत्पश्चात् 1922 में कोठारी ने महाराजा शिवाजी राव हाई स्कूल इन्दौर से मैट्रिक की परीक्षा पास की। 1924 में पुनः इन्दौर से वापस उदयपुर से राजपुताना बोर्ड से इण्टरमीडिएट परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया एवं भौतिक, रसायन व गणित में विशेष योग्यता प्राप्त किया। 1926 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी.एस-सी. किया एवं 1928 में भौतिकी में एम.एस-सी. किया। उस समय भौतिक विज्ञान विभाग के विभागाध्यक्ष प्रो. मेघनाद साहा थे। कोठारी का विशेषीकरण वायरलेस (इलेक्ट्रानिक्स) में था। तत्पश्चात् इलाहाबाद विश्वविद्यालय में भौतिक विभाग में डिमाण्स्ट्रेटर के पद पर नियुक्त हुए। दो वर्ष के बाद उच्च अध्ययन के लिए कोठारी को

* रीडर, शिक्षा संकाय, सतीश चन्द्र कालेज, बलिया, उ.प्र.

प्रो0 मेघनाद शाह की संस्तुति पर इंग्लैंड में कैम्ब्रिज में प्रो. रदरफोर्ड के निर्देशन में कार्य करने का अवसर मिला । वहीं से पी. एच-डी. करने के बाद कोठारी भारतवर्ष पुनः वापस डिमान्स्ट्रेटर के पद पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय आ गये। मई 1934 में कोठारी दिल्ली विश्वविद्यालय में रीडर एवं विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए। 1942 में कोठारी प्रोफेसर नियुक्त हुए। उनका प्रेशर आयोनाइजेशन (pressure Ionization) पर कार्य काफी सराहनीय एवं उत्कृष्ट है। 1948 में भारत सरकार ने रक्षा मंत्रालय में वैज्ञानिक सलाहकार नियुक्त किया। तत्पश्चात् उन्हें 1961 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

(महन्ती, एस-2007)

भारत सरकार शिक्षा के विकास एवं सुधार के क्षेत्र में सचेत रही। इसी कारण विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948) तथा माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952) गठित किया गया। इन आयोगों ने उच्च शिक्षा तथा माध्यमिक शिक्षा के सुधार तथा विकास हेतु संस्तुतियाँ दी। परंतु इन संस्तुतियों का पूर्णतः क्रियान्वयन नहीं हो पाया। परिणाम यह हुआ कि शिक्षा की गुणवत्ता एवं स्वरूप में अपेक्षित सुधार तथा विकास नहीं हुआ । इसलिए शिक्षा मंत्रालय ने तृतीय शिक्षा आयोग का प्रस्ताव रखा। भारत सरकार ने 14 जुलाई 1964 को राष्ट्रीय शिक्षा आयोग हेतु प्रस्ताव पारित किया। भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा आयोग की नियुक्ति की जिसने अपना कार्य 2 अक्टूबर 1964 से प्रारम्भ किया और अंतिम रिपोर्ट 19 जून 1966 को प्रस्तुत की थी। इस आयोग के अध्यक्ष प्रो. डी.एस. कोठारी नियुक्त किये गये। इसीलिए प्रायः इसे कोठारी आयोग (1964-66) कहा जाता है। इसके प्रतिवेदन को शिक्षा व राष्ट्रीय विकास (Education and Nation Development)कहा जाता है। प्रो. कोठारी की चर्चित पुस्तक- आणविक विस्फोट एवं उसका प्रभाव (Nuclear Explosions and Their Effects) जो होमी जे भाभा के संयुक्त प्रयास से लिखी गयी है,भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान के रूप में है। जिसका जर्मन, रसियन एवं जापानीज भाषा में अनुवाद किया गया है। 1982-92 तक प्रो. कोठारी जे.एन.यू. के चान्सलर रहे। प्रख्यात वैज्ञानिक शिक्षाविद् एवं मानवतावादी चिन्तक प्रो. कोठारी का निधन 4 फरवरी 1993 को हो गया। उनके सम्मान में दिल्ली विश्वविद्यालय ने डी.एस. कोठारी सेंटर फार साइंस, इथिक्स ऐंड एजूकेशन सेंटर स्थापित किया है। यह केंद्र प्रत्येक वर्ष डी. एस. कोठारी स्मृति व्याख्यान आयोजित

करता है। प्रो. डी. एस. कोठारी की जन्म शताब्दी मनायी जा रही है। इसी परिप्रेक्ष्य में 11 फरवरी 2007 को योजना आयोग के सदस्य के. वैंकट सुब्रहण्यम द्वारा डी.एस. कोठारी के ऊपर लिखित तकनीकी एवं गैर तकनीकी संदर्भों से युक्त विज्ञान व मानवतावाद (Scicnce and Humanism) का विमोचन किया गया।

(दि हिन्दू–5 फरवरी 2004)

इसी क्रम में यू.जी.सी. ने 2007–08 सत्र से प्रो. कोठारी के जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में न्यू यू.जी.सी. पोस्ट डाक्टोरल फेलोशिप प्रारंभ किया है।

कृतित्व

प्रो. डी.एस. कोठारी को भारत में रक्षा विज्ञान का शिल्पी कहा जाता है क्योंकि 1948–1961 तक वे भारत सरकार के रक्षा मंत्रालय में वैज्ञानिक सलाहकार रहे। उपरोक्त काल में भारत के विभिन्न हिस्सों में रक्षा विज्ञान से संबंधित विभिन्न प्रयोगशालायें स्थापित की गयी। यथा– इंस्टीच्यूट ऑफ आर्मामेंट स्टडीज, पूने सेंटर फार फायर रिसर्च, दिल्ली, सालिड स्टेट फिजिक्स लेबोरेटरी, दिल्ली, डिफेन्स फूड रिसर्च लेबोरेट्री, हैदराबाइ, साइन्टिफिक इवैल्यूएशन ग्रुप दिल्ली एवं टेक्निकल बैलिस्टिक रिसर्च लेबोरेट्री, चंडीगढ़। दूसरी तरफ होमी जे. भाभा के साथ्रा मिलकर प्रो. कोठारी ने न्यूक्लियर एक्सप्लोजन ऐंड दियर इफेक्ट्स कृति की रचना कर भौतिक विज्ञान विषय पर भी अपना पूर्ण स्वामित्व रखे। विज्ञान से प्रभावित होने के बाद भी डॉ. कोठारी के मन में सत्य एवं अहिंसा के लिए मन में अपार स्नेह था। वे सर्वधर्म समभाव व तार्किकता पर बल देते थे। विज्ञान व धर्म के समन्वय को अनिवार्य मानते थे क्योंकि जहाँ विज्ञान भौतिक सुख समृद्धि प्रदान करता है वहीं धर्म (आध्यात्मिकता) से मानसिक शांति प्राप्त होती है। (टाइम्स ऑफ इण्डिया–16 फरवरी 2006) शिक्षा का आध्यात्मिकरण से तात्पर्य शिक्षा में संस्कार पक्ष को दृढ़ करना। आधुनिक शिक्षा में प्रमुख रूप से ज्ञान तथा कुछ अंशों में कौशलों पर ध्यान दिया जाता है, संस्कार व सृजन पक्ष लगभग उपेक्षित रहता है। व्यक्तित्व के विकास के दो पक्ष होते हैं एक शारीरिक तथा दूसरा आत्मिक। शारीरिक पक्ष में शरीर, मष्तिष्क तथा हृदय है तथा आत्मिक पक्ष में आत्मा, मन, चित्त एवं बुद्धि है। मन का संबंध आत्मिक पक्ष से होता है। धर्म विश्व में एकता सुरक्षा व शांति की स्थापना करता है। यह व्यक्ति, समाज, राष्ट्र व विश्व का संचालक व पोषक बल है। धर्म मनुष्य की प्रगति का साधक है। मनुष्य की आध्यात्मिक प्रगति को प्रत्यक्ष रूप

में और भौतिक प्रगति को अप्रत्यक्ष रूप में धर्म से प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिलता है। इस प्रकार प्रो.कोठारी का मानना था कि विज्ञान एवं धर्म का निर्णय उनकी उपलब्धियों से होना चाहिए न कि उनके मिथ्या या महत्व की आकांक्षा के द्वारा।

(अहमद–2003,महन्ती–2007)

दूसरी तरफ प्रो. कोठारी को भारत में आधुनिक शैक्षिक क्रांति व आंदोलन का निर्माता कहा जाता है। क्योंकि शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन– शिक्षा व राष्ट्रीय विकास सम्पूर्ण भारतीय शिक्षा प्रणाली का आइना है। (चौधरी 2002) प्रो. कोठारी का मानना था कि विज्ञान व प्रोद्योगिकी शिक्षा को प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय विकास एवं समृद्धि से समन्वित व संबंधित होना चाहिए। जिससे मानव जीवन की गुणवत्ता को बनाये रखा जा सके। आयोग का मानना था कि शिक्षा के राष्ट्रीय लक्ष्य के अंतर्गत शिक्षा को हमारी सामाजिक जीवन पद्धति के अनुरूप बनाया जाना चाहिए। शिक्षा को उत्पादकता के साथ संबंधित बनाया जाए एवं सामाजिक नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का विकास किया जाए। पाठ ऐसे हों जो जीवन व परिस्थितियों से संबंधित हों, जिनसे छात्रों में राष्ट्र प्रेम की भावना का विकास हो और इस प्रेरणा का उदय हो कि हम दूसरों से जीवन पर्यन्त सीखते रहे क्योंकि जहाँ सीखना बंद हुआ वहीं मष्तिष्क भी बंद हो जाता है। छात्रों को सैद्धांतिक व पुस्तकीय ज्ञान देने के बजाय उनकी अभिवृत्ति में परिवर्तन लाने की चेष्टा करनी चाहिए जिससे वे विश्व गांव की चुनौती का सामना करने के लिए तैयार हो, राष्ट्र की प्रतिभा व परम्परा को सम्मान मिले यही शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य होना चाहिए।

शिक्षा आयोग (1964 –66) ने अपनी रिपोर्ट में शिक्षा नीति में राष्ट्रीय विकास की समस्याओं में राष्ट्रीय एकता को मुख्य समस्या मानते हुए कहा कि''शिक्षा की मुख्य भूमिका सामाजिक व राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति में है। भारतीय समाज सोपानबद्ध है, इसलिए इसमें एक स्तरीय गतिशीलता की कमी है। विभिन्न वर्गों में सामाजिक दूरी काफी लंबी है। ये दूरियाँ अमीर एवं गरीब के बीच, शिक्षित एवं अशिक्षित के बीच है तथा इन दूरियों की और लंबी होने की प्रवृत्ति भी है।'' शिक्षा आयोग की रिपोर्ट के बाद इस तथ्य पर प्रकाश डाला गया कि शिक्षा देश की जड़ों से जुड़ी होनी चाहिए तथा इस रिपोर्ट के आने के 40 वर्ष बाद भी ये विचार पूरे विश्व के संदर्भ में उभर कर सामने आये हैं। वर्तमान भारतीय शैक्षिक संदर्भ में जानकारी का प्रसार तो हो रहा है परंतु ज्ञान की शक्ति क्षीण हो रही है। इनके बीच के असंतुलन को दूर करना आवश्यक है। इस

प्रक्रिया को स्वरूप देने में ही शिक्षा की भूमिका है। वर्तमान सूचना एवं संचार तकनीक भी विभिन्न राष्ट्रों के बीच नकारात्मक दृष्टिकोण विकसित कर रही है जो विश्व व्यापकता के विकास में बाधक है। अत: अपनी शिक्षा नीति एवं सूचना संचार नीति में सृजनात्मक आन्दोलन की आवश्यकता है।

(अहमद–2002)

प्रो. कोठारी शिक्षा के विभिन्न स्तरों (प्राथमिक माध्यमिक एवं उच्च) में संतुलन पर बल देते थे। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, शिक्षण, शोध एवं अधिगम के लिए प्रत्येक स्तर पर जो कृत्रिम दोहराव (ओवरलैपिंग) परिलक्षित हो रहा है, उसे रोकने की जरूरत है। इन विभाजनों को वे तीन श्रेणियों में रखते हैं–निपुणता पूर्वक उचित कार्य करने का विभाजन(टैक्टिकल), व्यूह रचना (स्ट्राटेजिक) एवं मानवतावादी (ह्यूमनिस्टिक)। टैक्टिकल विभाजन का संबंध जीवन पर्यन्त उपयोगिता के लिए सैद्धान्तिक व व्यावहारकि ज्ञान का होना, स्ट्राटेजिक विभाजन का संबंध जीवन पर्यन्त उपयोगिता एवं मूल्यों के ज्ञान से संबंधित एवं ह्यूमनिस्टिक का संबंध गुणवत्ता पूर्ण जीवन से महत्व से संबंधित है। दूसरी तरफ प्रो. कोठारी प्राथमिक शिक्षा को जीवन की प्रयोगशाला मानते थे। निरक्षरता को वे दीर्घकाल में अपव्यय मानते थे। गुणवत्ता, उत्कृष्ठता एवं मूल्यविहीन शिक्षा को वे निरर्थक प्रयास व अपव्यय मानते थे। वे अपने दृष्टिकोण में युवाओं एवं वैज्ञानिकों पर सर्वाधिक आस्था रखते थे। नेशनल साइंस टैलेन्ट सर्च प्रोग्राम एवं राष्ट्रीय प्रतिभा खोज परीक्षा जो राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली द्वारा आयोजित की जाती है। वे प्रो. कोठारी की स्वयं की सोच एवं दृष्टि (Vision) है। वे मानते थे कि कोई भी शिक्षा पद्धति उस राष्ट्र विशेष के प्रतिभा, परम्परा एवं राष्ट्रीय संदर्भ से जुड़ा होना चाहिए। वास्तव में आज विद्यार्थी का मुख्य उद्देश्य प्रमाणीकरण से जुड़ जाना है जिसके कारण बालकों में सृजन, समस्या–समाधान एवं आलोचनात्मक चिन्तन का विकास नहीं होता है। जिससे सूचनात्मक ज्ञान में तो अप्रत्याशित वृद्धि हो रही है लेकिन विवके एवं मानवीय मूल्य अप्रभावित है।

(कोठारी 1988)

प्रो. कोठारी आधुनिक शिक्षा के लिए एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण के लिए विज्ञान एवं तकनीक की शिक्षा पर बल दिये। भारत को 21 वीं शताब्दी की चुनौतियों से वैज्ञानिक चिन्तन ही मुक्ति दिला सकता है। लेकिन विज्ञान जो 100–150 विषयों में विभाजित है,

इसे अव्यावहारिक एवं अविहित (Arbitrary)मानते थे। विज्ञान को वे विभिन्न खण्डों एवं अंशों में विभाजन को कृत्रिम मानते थे, विज्ञान, सही अर्थों में एकीकरण (Unity) है। डॉ. डी. एस. कोठारी ने जीवन पर्यन्त अपने कार्य के क्षेत्र में दृष्टि एवं मूल्यों को सर्वाधिक महत्व दिया लेकिन वर्तमान शैक्षिक संदर्भ में वे सर्वाधिक उपेक्षित हैं। प्रख्यात चिन्तक डॉ. कर्ण सिंह ने डी.एस. कोठारी जन्म शताब्दी कार्यक्रम में अर्न्तक्रियात्मक सत्र में सारगर्भित व्याख्यान में कहा कि प्रो. कोठारी के व्यक्तित्व व कृतित्व में ज्ञान व विज्ञान का अद्‌भूत समन्वय था। जिसकी वर्तमान में सांदर्भिक उपादेयता से इन्कार नहीं किया जा सकता है। शिक्षा के चार स्तंभों – लर्निंग टू नो (ज्ञान योग), लर्निंग टू डू (कर्म योग), लर्निंग टू लिव विथ अदर्स (सहयोग) एवं लर्निंग टू बी (शिक्षा कुछ बनने के लिए) रूप में ज्ञान व विज्ञान में अद्‌भूत समन्वय के रूप में देखा जा सकता है।

(यूनिवर्सिटी न्यूज–2007)

'लर्निंग टू नो' से पूर्व ' लर्निंग टू लर्न' के बारे में जानकारी प्राप्त करनी होगी। डॉ. कोठारी के चिन्तन का आधार लर्निंग टू लर्न है क्योंकि सामान्य जानकारी जो ज्ञान का परिणाम है अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक को स्वाध्याय की आवश्यकता है तथा जीवन पर्यन्त उन अवसरों का लाभ उठाकर आत्म कौशल विकसित करना चाहिए। इससे बालकों में ज्ञान, कौशल, दृष्टिकोण तथा अपने को जटिल व परिवर्तनीय विकास में सहायता प्राप्त हो सकेगी। जीवन पर्यन्त शिक्षा की खोज में प्रत्येक व्यक्ति को निरनतर सामान्य ज्ञान का नवीनीकरण करना तथा जानकारी की गहराई तक जाना आवश्यक है। इस प्रकार वैज्ञानिक सोच के लिए ध्यान केंद्रित करने की क्षमता, स्मरण शक्ति तथा चिन्तन की शक्ति विकसित करने की आवश्यकता महत्वपूर्ण है।

शिक्षा का दूसरा स्तंभ 'लर्निंग टू डू' 'लर्निंग टू नो' से ही समन्वित व सम्बन्धित है। इसीलिए बहुत से विकासशील देश वैज्ञानिक संस्कृति की प्राप्ति को सुनिश्चित करने में लगे हैं ताकि तकनीकी शिक्षा भविष्य की जीवन शैली के लिए स्थान प्राप्त कर सके। नवाचारों के लिए क्षमताओं एवं योग्यताओं तथा सृजनात्मक का पोषण वर्तमान संदर्भ में करना होगा। मुख्य संदर्भ बिदुं ऐसे लोगों को तैयार करने का है जो मानवतापूर्ण विकास हेतु भविष्य निमार्ण में प्रभावी भूमिका निभायेंगे।

वर्तमान शैक्षिक संदर्भ में शिक्षा का मूल उद्देश्य ही विलुप्त होता जा रहा है, सूचनात्मक ज्ञान को ही शिक्षा का पर्याय माना जाने लगा है, ज्ञान में बढ़ोत्तरी हो रही है लेकिन विवके में हरास हो रहा है, प्रमाणीकरण ही व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य हो गया है, मानवीय मूल्यों का मानव जीवन से संबंध विच्छेद सा हो गया है, अर्थात् पूर्ण शैक्षिक पारिस्थितिकी पर नकारात्मक सोच व प्रदर्शन प्रभाव परिलक्षित हो रहा है। इन परिस्थितियों में आवश्यकता इस बात की है ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित की जाए जो संस्कार, सृजन व मानवतापूर्ण विकास की पूर्ण पोषक हो क्योंकि प्रो. कोठारी का मानना था कि भारत के भाग्य का निमार्ण उसकी कक्षा में किया जा रहा है। इस प्रकार सर्वाधिक महत्वपूर्ण शिक्षा का स्तंभ 'लर्निंग टू लिव विथ अदर्स' है जो जीवन पर्यन्त शिक्षा का पक्षधर है।

'लर्निंग टू बी' शिक्षा का चौथा स्तंभ है। यही फारे रिपोर्ट का शीर्षक भी है। 1972 में एक अन्तर्राष्ट्रीय आयोग ने शिक्षा के विकास पर एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसका नाम 'लर्निंग टू बी' था। इस आयोग के अध्यक्ष फ्रांस के प्रधानमंत्री एडगर फारे थे। रिपोर्ट में यह भय दशार्या गया था कि विज्ञान व तकनीकी के विकास एवं परिवर्तन से पूरा विश्व अमानवीय बन जायेगा। तब शिक्षा का कार्य यह माना गया कि 'व्यक्ति को इस योग्य बनाये कि वह अपनी समस्यायें हल कर सकें, अपने निर्णय स्वयं ले सके तथा अपने उत्तरदायित्व स्वयं निभा सके। (राजपूत–1997)

लेकिन उपरोक्त भय के आलोक में डॉ. कोठारी का चिन्तन मानव विकास व कल्याण के तरफ इंगित करता है। प्रख्यात भौतिक विज्ञान विद् एवं भारतीय शिक्षा आयोग के अध्यक्ष डॉ. कोठारी के स्वयं के शब्दों में विज्ञान व तकनीक तो उत्तरोतर प्रगति के पथ पर हैं लेकिन विवके में हरास हो रहा है । ज्ञान का क्षितिज बढ़ रहा है लेकिन व्यक्तित्व का मानवतापूर्ण विकास नहीं हो रहा है। एक तरफ ज्ञान का विस्फोट तो हो रहा है लेकिन विज्ञान व अध्यात्म के समन्वय के अभाव में विवके घट रहा है। हिंसा का विसफोट वलयाकार (Spiral) रूप से लालच, घृणा व भ्रम के रूप में बढ़ रहा है तो दूसरी तरफ तेा विज्ञान, तकनीक व उत्पादकता में भी बलयाकार रूप में अप्रत्याशित वृद्धि हो रही है। (नन्दा–1997)

यदि विज्ञान तकनीक एवं उत्पादकता जो वलयाकार स्थिति में है, को संस्कार सृजन व मानवतापूर्ण विकास (अध्यात्म) का उचित समन्वय हो जाए तो शिक्षा का मूल

उद्देश्य शिक्षा ही जीवन की प्रयोगशाला है, को पुनर्स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि डॉ. कोठारी का चिन्तन ज्ञान व विज्ञान व अध्यात्म का अप्रतिम समन्वय है जो शिक्षा के चारों स्तंभ पर आधारित है। (कोठारी–1963)

निष्कर्ष

शिक्षा का सर्वोत्कृष्ट उद्देश्य वातावरण का सृजन है, जो संस्कार व मानवतापूर्ण व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का आधार है। शिक्षा या तो प्रस्तुत वातावरण का रूपान्तरण करती है या विशिष्ट वातावरण का सृजन। प्रो. कोठारी का सम्पूर्ण चिन्तन भारतीय परिस्थितियों एवं संदर्भों से जुड़ा हुआ है। एक तरफ वे विज्ञान व प्रौद्योगिकी के माध्यम से वैज्ञानिक मूल्यों– समस्या समाधान, तर्क, निर्णय, संश्लेषण–विश्लेषण आलोचनात्मक चिन्तन को छात्रों में विकसित करने की प्रेरणा देते हैं तो दूसरी तरफ मानवतावादी चिन्तक के रूप में मानवीय मूल्यों – सत्य, धर्म, प्रेम, शान्ति, अहिंसा, अध्यात्म, चरित्र, संस्कार से जुड़े होने का दायित्व बोध कराते हैं। इस प्रकार उनके चिन्तन में ज्ञान विज्ञान व धर्म का अद्‌भूत सामन्जस्य है।

प्रो. कोठारी ने अपने चिन्तन एवं अनुभव के द्वारा भारतीय शिक्षा प्रणाली की समस्याओं का गहन अध्ययन किया एवं शिक्षा आयोग (1964–66) के प्रतिवेदन में उनके विजन को स्पष्ट मान्यता मिली। यह प्रतिवेदन भारतीय शिक्षा में मील का पत्थर है। कोठारी आयोग के प्रतिवेदन के बाद जितने भी भारतीय शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन हुए, सभी का आधार स्तंभ प्रो. कोठारी का चिन्तन है। लेकिन उनके संस्तुतियों पर पूर्ण रूप से अमल नहीं हो सका एवं अनुप्रयोगात्मक प्रासंगिकता न्यून हेा गयी। दृढ़ राजनैतिक इच्छा शक्ति एवं प्रतिबद्धता के अभाव में भारतीय शिक्षा प्रणाली अपने शिखर तक नहीं पहुँच सकी अन्यथा राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की भारतीय शिक्षा के प्रति गम्भीरतम किंतु सांदर्भिक उपादेय टिप्पणी से बचा जा सकता था। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रो. कोठारी के शैक्षिक चिन्तन को पुनः संदर्भित कर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के माध्यम से मानव जीवन की गुणवत्ता को बनाये रखा जा सकता है क्योंकि गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा ही जीवन की प्रयोगशाला है एवं प्रो. कोठारी का विजन एवं चिन्तन जीवन पद्धति है।

संदर्भ

अहमद, एफ –2002 *एटम एंड सेल्फ: कलेक्शन ऑफ लेक्चर डेलवर्ड वाई डी. एस. कोठारी,* नई दिल्ली: न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर।

अहमद, एफ –2002 *नालेज एंड विजडम: कलेक्शन ऑफ लेक्चर डेलवर्ड वाई डी. एस. कोठारी,* नई दिल्ली: न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर।

एन.सी.ई.आर.टी.(1970) *एजूकेशन एंड नेशनल डेवलपमेंट,* रिपोर्ट ऑफ एजूकेशन कमीशन 1964–66

कोठारी, डी.एस. (1988) लेक्चर डिलिवर्ड आन दि अकेजन ऑफ गोल्डेन जुबली फंक्शन आफॅ फेकल्टी ऑफ एजूकेशन, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली, अक्टूबर 29,1988

कोठारी, डी.एस. (1963) प्रेसीडेन्सीयल ऐड्रेस टू इंडियन सांइस कांग्रेस, दिल्ली, अक्टूबर 7,1963

चौधरी, धनराज (2002) *कीर्तिपुरूष : पद्मविभूषण प्रो. दौलत सिंह कोठारी की जीवनी पर आधारित एक उपन्यास,* नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।

दि हिंदू: डब्लू डब्लू डब्लू, द हिन्दू काम/2004/02/05/स्टोरीज। डब्लू डब्लू डब्लू, विज्ञान प्रसार, गर्व, इन/साइन्टिस्ट्स/डी कोठारी।

दलाई लामा : *साइंस एंड स्प्रिचुअलटी,* टाइम्स ऑफ इण्डिया, फरवरी 13 2006

नन्दा आर.टी. (1997): *कन्टेम्परोरी एप्रोचेज टू वैल्यू एजुकेशन,* नई दिल्ली, रीजेन्सी पब्लिकेशन पृ. 4

महन्ती, एस. (2007): *दौलत सिंह कोठारी : द आर्किटेक्ट ऑफ डिफेन्स साइन्सेज इन इंडिया,* विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली

मेहरोत्रा, आर.सी. एंड अरोरा, रमेश के. (1994): *एजुकेशन, साइन्स एंड ह्यूमन वैल्यूज:* एसे इन आनर ऑफ प्रो. डी.एस. कोठारी, नई दिल्ली : विल्ली एस्टर्न।

यूनिवर्सिटी न्यूज : *इन्टरेक्टिव सेशन आन विजन एंड वैल्यूज इन स्कूल एजुकेशन,* 45 (48), नव. 26, दिसम्बर 02, 2007

राजपूत, सरला (1997) : *सीखने का स्रोत : भीतर का खजाना,* भारतीय आधुनिक शिक्षा, वर्ष 14, अंक–4, अप्रैल 1997 एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।

शर्मा, आर.ए. (2006) *भारतीय शिक्षा प्रणाली का विकास,* मेरठ : आर लाल बुक डिपो

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 3, दिसंबर 2008

समीक्षालेख

राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन का इतिहास

अजय कुमार मिश्र

राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन का इतिहास *संपादक:* ***देवेन्द्र स्वरूप****, प्रकाशक:* ***प्रतिभा प्रतिष्ठान,*** *1661 दखनीराय स्ट्रीट, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली प्रथम संस्करण: 2007 पृ. 254, मूल्य 300/-*

प्रस्तुत ग्रंथ प्रारंभिक ब्रिटिश सर्वेक्षणों के आधार पर उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ तक प्राचीन भारतीय शिक्षा- व्यवस्था के अवशेषों का विहंगम चित्र; तथा उस समय तक ब्रिटेन में शिक्षा की स्थिति का चित्रण के अलावा राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन के सिद्धांतों एवं प्रयोगों का दस्तावेज है। इस ग्रन्थ के 'विषय प्रवेश' में ही सम्पादक देवेंद्र स्वरूप ने शिक्षा-प्रणाली की दिशाहीनता को उद्घाटित किया है,'स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी हम उसी मूल को दोहरा रहे हैं। एक ओर अंग्रेजों द्वारा प्रवर्तित अर्थ-रचना, न्याय-प्रणाली एवं प्रशासकीय व्यवस्थाओं व संवैधानिक प्रक्रिया का विस्तार करते जा रहे हैं, तो दूसरी ओर इन व्यवस्थाओं की आवश्यकता को पूर्ण करने वाली शिक्षा-प्रणाली की निंदा करके उसमें आमूल परिवर्तन की तोता-रटंन भी करते रहे हैं। प्रत्यक्ष परिणाम यह है कि शिक्षा -पद्धति में कोई परिवर्तन किए बिना हम उसका अंधाधुंध विस्तार किए जा रहे हैं और वह शिक्षा-पद्धति प्रमाणिता पूर्वक, मैकाले के शब्दों में, ऐसी पीढ़ी पैदा कर रही है, ''जो रंग और रक्त से तो भारतीय होगी, किंतु विचारों, आदर्शों और रूचियों में अंग्रेज होगी।''

प्रथम अध्याय 'ब्रिटिश पूर्व भारत में शिक्षा व्यवस्था' में लेखक रामस्वरूप ने शिक्षा संबंधी ब्रिटिश सर्वेक्षण रपटों के आधार पर सिद्ध किया है कि अंग्रेजों की कुटिलता के कारण इसमें बेहद कमी होती गयी। प्रारभिंक पाठशालाओं और मक्तबों से आगे बढ़कर उच्च शिक्षा भी देशव्यापी थी। ब्रिटिश सर्वेक्षण के अनुसार आरंभिक स्कूलों और उच्च विद्यालयों के कुल 1,75,089 छात्रों-छात्राओं में से केवल 42,502 (24.2

* निगम प्राथमिक बाल विद्यालय नं. 1, तिगड़ी, नई दिल्ली-62

प्रतिशत) ही ब्राह्मण थे, 48.8 प्रतिशत शूद्र थे और 15.7 प्रतिशत शूद्रों से भी नीची जाति अर्थात् पारिया थे। निहित स्वार्थ के कारण पादरियों और ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने दुष्प्रचार किया (जो अब भी प्रचलित है।) कि भारत में शिक्षा का एकाधिकार ब्राह्मणों को था। इस भ्रान्ति का निवारण करना है। इसी अध्याय में अक्षर-ज्ञान की सरल पद्धति, प्रत्येक भाषा में शिक्षा की उपलब्धता, भारतीय जीवन में शिक्षा का महत्व के साथ-साथ ब्रिटिश सरकार के बढ़ते प्रभाव के कारण शिक्षा-व्यवस्था के ह्रास का बेबाक चित्रण आँखें खोल देने वाला है।

अध्याय- 'ब्रिटेन में शिक्षा की स्थिति (1740-1830)' के अंतर्गत संपादक देवेंद्र स्वरूप ने ब्रिटेन की बदहाल शिक्षा-प्रणाली एवं व्यवस्था का विवरण दिया है। वहाँ की शिक्षा-व्यवस्था बदहाल थी, शिक्षा की सुविधा केवल उच्च वर्ग के थोड़े से लोगों तक सीमित थी। शिक्षा का उद्देश्य विशुद्ध धार्मिक था और शिक्षा- प्रसार में सरकार की कोई रूचि नहीं थी। अध्यापकों और शिक्षा का स्तर निम्न था। हालांकि औद्योगिक क्रांति के परिणाम स्वरूप स्कूली शिक्षा की महत्ता समझ में आने लगी थी। अनेक वर्षों तक चली बहस के पश्चात् ब्रिटिश संसद 1859 में 9 लाख पौंड की मामूली रकम अनुदान राशि के रूप में स्वीकृत थी जबकि इंग्लैड का विश्व व्यापार पर लगभग एकाधिकार हो गया था। लेखक ने शिक्षा-इतिहास के इस ओझल तथ्य को प्रकाश में लाया है कि मद्रास प्रेसीडेंसी के चैपलेन एंडयू बेल ने मद्रास प्रेसीडेंसी में प्रचलित शिक्षा-प्रणाली व्यवस्था की नकल पर इंग्लैंड में ऐसी ही प्रणाली 'मद्रास-पद्धति' की शुरूआत की जिससे वहाँ शिक्षा के श्रेत्र में उन्नति आ गयी। इस प्रकार इंग्लैड भारत का ऋणी देश कहा जा सकता है। 'भारत में ब्रिटिश शिक्षा नीति का विकास' में देवेंद्र स्वरूप ने अंग्रेजों की शिक्षा नीति के विकास को कालक्रम से तीन चरणों, यथा (1)1772-1819 (2)1819-1835 तथा (3) 1835 के पश्चात्; में बाँटा है। इस अध्याय में आद्योपान्त यह तथ्य उभरता है कि अंग्रेजों ने स्व-हितार्थ किस प्रकार भारतीय शिक्षा प्रणाली-व्यवस्था को धवस्त कर दिया जिसका दुष्परिणाम अब तक भारत भोग रहा है।, आठवें अध्याय - 'बंगाल में राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन और श्री अरविंद' में राष्ट्रीय शिक्षा में श्री अरविंद के योगदान की विस्तृत चर्चा है। लेखक ने यह भी विवेचन किया है कि श्री अरविंद कहाँ, कब और कैसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति-प्रयोग से असंतुष्ट भी रहे।

प्रशांत बेदालंकार ने 'राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन में आर्यसमाज' के अतंर्गत स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिक्षा संबंधी दर्शन एवं प्रयोग विश्लेषित किया है। वेदालंकार जी, स्वामी दयानन्द के दर्शन एवं प्रयोग से सहमत नजर आते हैं। इसी कारण वेद-पाठशालाओं, नारी-शिक्षा, गुरुकुल- व्यवस्था एवं चरित्र-निर्माण पर जोर देते हैं। आर्य समाज का

राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन में पहली भूमिका की जानकारी इस अध्याय में मिलती है। चंद्रपाल सिंह ने 'महाराष्ट्र में राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन' में महाराष्ट्र के विद्ववानों का राष्ट्रीय शिक्षा के प्रति समर्पण को सविस्तारपूर्वक प्रकाश में लाया है। संस्थाओं-विद्यापीठों के योगदान की चर्चा भी इसमें समाहित की है। राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन के विभिन्न चरणों में अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली का विकल्प खोजने की जन-भावना की प्रबलता रेखांकित की है।

'राष्ट्रीय शिक्षा के आंदोलन का इतिहास' विषय का मूल्यांकन गांधीजी की इस क्षेत्र में योगदान की चर्चा के बिना अधूरा रहेगा। एतदर्थ लेखक रामशकल पांडेय ने 'गांधीजी के शैक्षिक प्रयोग' के तहत गांधीजी की भूमिका उपस्थित की है। वस्तुत: गांधीजी के शिक्षा संबंधी विचार किताबी ज्ञान पर आधृत नहीं थे। 1909 में ट्रांसवाल नामक स्थान पर 'टॉल्स्टॉय आश्रम' की स्थापना करके उन्होंने उपयोगी शिक्षा-पद्धति खोज निकालने का संकल्प लिया। भारत आने पर साबरमती आश्रम और सेवाग्राम के आश्रम के बच्चों पर शिक्षा प्रयोग किया। स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लेने वाले विद्यार्थियों के हितार्थ विभिन्न विद्यापीठों की स्थापना में अहम भूमिका निभायी। विभिन्न अनुभवों एवं प्रयोगों को आत्मासात् करते हुए अप्रैल 1938 में हरिपुरा में सम्पन्न काँग्रेस अधिवेशन में 'बेसिक शिक्षा' का जन्म हुआ। इस शिक्षा के चार प्रमुख सिद्धांत हैं- (1) सर्वभौम अनिवार्य नि:शुल्क शिक्षा (2) मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा (3) उद्योग-केन्द्रित शिक्षा (4) स्वावलम्बन। हालांकि स्वावलम्बक विषय पर काफी बहस- आलोचना हुई। अंतत:'बेसिक शिक्षा' का प्रायोगिक विस्तार होता गया। इसकी समीक्षाएं भी हुईं जिसमें इसे समयानुकूल माना गया। मगर यह दुर्भाग्य है कि स्वाधीन भारत में 'बेसिक शिक्षा' का अंतिम संस्कार सम्पन्न हो गया। इस कारण रामशकल पांडेय जी मर्माहित नजर आते हैं। शिक्षाविद् की पीड़ा अब समस्त भारत की पीड़ा है। स्वयं उनके उद्गार, 'गांधी जी ने हमें अपनी सर्वोत्तम भेंट बेसिक शिक्षा प्रदान की, हमने उसे कुशिक्षा में परिवर्तित कर दिया। हमने गांधीवाद को कलुषित कर दिया।' (पृष्ठ सं. 208) अब पांडेय जी का हृदय पुन: एक गांधी के नेतृत्व की आवश्यकता महसूस करता है।

राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन में काशी विद्यापीठ की अहम भूमिका थी। शिव प्रसाद जी गुप्त के अथक प्रयास के फलस्वरूप यह विद्यापीठ 10 फरवरी 1921 को महात्मा गांधी के कर कमलों से उद्घाटित हुआ। स्वाधीनता, स्वदेश प्रेम, लोक-सेवा, अध्यात्म विद्या की शिक्षा मातृभाषा-माध्यम से देना विद्यापीठ का उद्देश्य था। 1921-47 तक विद्यापीठ का इतिहास राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्ति के इतिहास से गहराई से जुड़ा रहा।

शिक्षाविद् शंकर शरण श्रीवास्तव ने 'काशी विद्यापीठ' की स्थापना से अब तक का संक्षिप्त विवरण दिया है। विद्यापीठ की वर्तमान दुर्दशा से छुब्ध श्रीवास्तव जी ने लिखा है, 'अब यह संस्था एक पतनोन्मुख प्रवाह के समान आदर्शच्युत होकर बस बहती चली जा रही है। (पृष्ठ सं. 219) लेखक ने यह रहस्योद्घाटित किया है कि वह स्वयं 35 अध्यापकों एवं 150 छात्रों से लघु साक्षात्कार किया जिसमें पाया कि विद्यापीठ के छात्र-वर्ग और अध्यापक वर्ग विद्यापीठ के मूलोद्देश्य से भटक चुके हैं।

इस ग्रंथ के अंतिम अध्याय 'अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली के दुष्प्रभाव' में देवदत्त डाभोलकर ने 'सिटिजन्स फॉर डेमोक्रेसी' द्वारा सन् 1978 में प्रकाशित 'हमारी जनता की शिक्षा-व्यवस्था: शिक्षा-विकास (1978-87) के लिए आधार नीति' शीर्षक दस्तावेज प्रस्तुत किया है। सुखद बात यह है कि स्वयं लेखक, देवदत्त डाभोलकर भी उस प्रारूप के हस्ताक्षरकर्त्ताओं में से एक हैं। उस दस्तावेज में अंग्रेजों से पूर्व प्रचलित भारतीय शिक्षा-प्रणाली-व्यवस्था की सराहना है, तो उन के द्वारा आरोपित मगर अब तक प्रचलित शिक्षा प्रणाली की दुर्दशा-दुष्प्रभाव का विवेचन भी है। हालांकि स्वयं लेखक ने उपर्युक्त दस्तावेज को कोई नया आविष्कार नहीं माना है। कारण कि कई दशकों पूर्व गांधीजी ने 'हिंद स्वराज' कृति में इसे स्पष्ट कर दिया था। लेखक डाभोलकर की पीड़ा है कि स्वाधीनता के इतने वर्षों पश्चात् भी हमारे लोकनायक- मार्गदर्शक इस ओर खास ध्यान नहीं देते, बल्कि उन्हीं'(अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली-व्यवस्था) रास्तों पर आगे चलने-चलाने को स्वयं को विवश मानते हैं। अंग्रेजो द्वारा थोपी गयी शिक्षा-प्रणाली राष्ट्र के लिए उचित नहीं है। अतएव राष्ट्र-हितार्थ एक नयी शिक्षा-नीति-निर्माण की आवश्यकता है।

उपर्युक्त विवेचन से इतना तो स्पष्ट है कि राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन में विद्यापीठों, छात्रों, अध्यापकों की भूमिका उल्लेखनीय थी। कालप्रवाह में बहते हुए ये विद्यापीठ मर्यादा-रहित जरूर हो गए हैं। फिर भी आन्दोलन के काल-खण्ड में प्रस्तुत शिक्षाविदों के शिक्षा-विषयक विचार-दर्शन अब भी प्रासंगिक हैं। वर्तमान शिक्षाविद् उनसे प्रेरणा लेकर इस राष्ट्र के लिए एक नयी शिक्षा नीति का निर्माण कर सकते हैं और राष्ट्र को एक नयी दिशा दे सकते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक भारतीय शिक्षा व्यवस्था की परंपरा और बाह्य हस्तक्षेप से उसके ह्रास को समझने में बहुत ही सहायक है। यह शिक्षा कर्मियों, शोधार्थियों और विद्यार्थियों के लिए एक उपयोगी पुस्तक है।